मूल्य : 20 रुपये
अंक 107
ज्येष्ठ, 2078 वि. सं.

(धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका)

गंगा दशहरा के उपलक्ष्य में

जल-विमर्श विशेषांक

गंगा माता

मकरवाहन जलदेवता वरुण

महावीर मन्दिर समाचार, पृ. 95 का शेषांश

महावीर मंदिर न्यास सचिव ने ऑक्सीजन आपूर्ति में सहयोग के लिए संजय भरतिया का विशेष आभार व्यक्त किया। महावीर मन्दिर के निकास द्वार के निकट शुरू किए गए ऑक्सीजन वितरण कार्य का प्रभारी नैवेद्यम शाखा के प्रमुख रामचन्द्रन शेषाद्री को बनाया गया है।
महावीर मन्दिर ने आरम्भ किया 40 शय्या का कोरोना अस्पताल

महावीर मन्दिर ने आरम्भ किया 40 शय्या का कोरोना अस्पताल

महावीर आरोग्य संस्थान में कोविड के इलाज का शुभारम्भ 7 मई, 2021ई. को महावीर मन्दिर न्यास के सचिव आचार्य किशोर कुणाल ने किया। उन्होंने कोरोना मरीजों की सेवा के लिए महावीर मन्दिर न्यास की ओर से संस्थान को दस लाख रुपये का अनुदान भी दिया। साथ ही, कोरोना मरीजों की समर्पण भाव से सेवा करनेवाले चिकित्सकों और अस्पतालकर्मियों को महावीर मन्दिर की ओर से सम्मानित करने की घोषणा भी की है। महावीर आरोग्य संस्थान में इलाज के बाद कोरोना को हराने वालों में बुद्धा कालोनी, पटना के शंकर सिंह, हाजीपुर की संजू देवी, सीआईएसएफ, बाढ़ के गौतम वर्मन और चिरैयाटाड़, पटना की रजनी शामिल हैं। चारों कोरोना योद्धाओं ने अस्पताल के डॉक्टरों और चिकित्साकर्मियों की सेवा भावना की प्रशंसा करते हुए महावीर मन्दिर न्यास के प्रति आभार व्यक्त किया।

स्वस्थ होकर लौटने लगे कोरोना वारियर

महावीर मन्दिर न्यास द्वारा संचालित महावीर आरोग्य संस्थान में भर्ती कोरोना मरीज अब ठीक होने लगे हैं। शनिवार को सघन इलाज के बाद स्वस्थ हुए चार कोरोना योद्धाओं को अस्पताल से छुट्टी

आवरण पृ. 3 पर जारी ➡

Title Code- BIHHIN00719

आलेख -सूची

धार्मिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय चेतना की पत्रिका

अंक 107

ज्येष्ठ, 2078 वि. सं.

27 मई- 24 जून, 2021ई.

प्रधान सम्पादक

आचार्य किशोर कुणाल

सम्पादक

भवनाथ झा

पत्राचार:

महावीर मन्दिर,

पटना रेलवे जंक्शन के सामने

पटना- 800001, बिहार

फोन: 0612-2223798

मोबाइल: 9334468400

E-mail:

dharmayanhindi@gmail.com

Website:

www.mahavirmandirpatna.org/dharmayan/

Whatsapp:

9334468400

मूल्य : 20 रुपये

पाठकीय प्रतिक्रिया

(अंक संख्या 106, वैशाख, 2078 वि.सं.)

जगज्जननी जानकी के आविर्भाव के उपलक्ष्य में प्रकाशित धर्मायण का प्रस्तुत शक्ति विमर्श विशेषांक (सं. 106 वैशाख 2078 वि. सं.) के अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ। विषय अत्यन्त ही प्रेरक व प्रासंगिक है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जहाँ नारी शक्ति के उत्पीड़न, यौन शोषण, दहेज जनित एवं वासनात्मक हत्याओं का हृदय विदारक दौर चल रहा है,वहाँ "विद्या समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु" का अहसास दिलाना आवश्यक है। विश्व की समस्त नारियाँ आदिशक्ति असुरनिकंदिनी महामाया की ही भेद हैं। शत्रुशक्ति के विनाश की अद्भुत रहस्यमयी शक्ति नारी में है- सीताजी के प्रादुर्भाव से लेकर जीवन पर्यंत उनका संघर्षमय साहसिक चरित्र इस बात की पुष्टि करता है। स्त्रियाँ दया, ममता, करुणा, साहस, प्रेम, समर्पण आदि मूल्यों की साक्षात् मूर्ति हैं, महाकवि जयशंकर प्रसाद की कामायनी में "नारी तुम केवल श्रद्धा हो..." अथवा मैथिली शरण गुप्त की यशोधरा में "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी.." आदि वैदिक/ऐतिहासिक उपाख्यानों पर आधृत उक्तियों से स्पष्ट होता है।

प्रस्तुत अंक के नए- पुराने सभी आलेख पर्याप्त रोचक और प्रभावोत्पादक हैं। संपादकीय लेख "तंत्रोपनिषदों में शक्ति की अवधारणा" में न केवल उपनिषदों की विस्तृत जानकारी दी गई है वरन् विभिन्न शाक्तोपनिषदों से भी पाठकों को अवगत कराया गया है। कौलोपनिषद् का सांगोपांग विवेचन तथा शैव, शाक्त एवं वैष्णव की एकात्मता को उपन्यस्त करना संपादक महोदय के गवेषणात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है।

श्री महेश प्रसाद पाठक जी ने अपने आलेख में 'सीता' शब्द की व्युत्पत्तिपरक व्याख्या के साथ -साथ उन्हें (सीता जी को) आदिशक्ति के अवतार रूप में प्रतिष्ठित होने के सन्दर्भ प्रस्तुत किए हैं। अद्भुत-रामायण के सीता जन्म सम्बन्ध दुर्लभ्य प्रसंग का सर्वथा नवीन कलेवर में सुधि लेखक ने सजीव चित्रण किया है, श्लाघनीय प्रयास है।

"श्री रामपट्टाभिषेक" शीर्षक आलेख द्वारा पं.मार्कण्डेय शारदेय ने श्री रामपट्टाभिषेक पूजन के माध्यम से आसेतु हिमाचल भारतीय संस्कृति की एकरूपता उपस्थापित कर राष्ट्रीय-सांस्कृतिक एकता का चित्र अंकित किया है।

धर्मायण के पुराने अंकों के कुछ आलेखों का पुनः प्रकाशन पत्रिका के नए अध्येताओं के लिए उपयुक्त एवं उपादेय है। रवि संगम जी ने "जनकभूमि की परिक्रमा" लेख के माध्यम से विदेह क्षेत्र जनकपुर का भौगोलिक-सांस्कृतिक चित्र उकेरा है जो पर्यटन की दृष्टि से उपयुक्त व लाभप्रद है।

गिरिधर दास कृत "श्री परशुराम कथामृत" तथा लल्लू लाल कृत 'प्रेम-सागर' से उद्धृत "परशुराम द्वारा सहस्रार्जुन वध"-जैसे अलभ्य प्रसंगों का समावेश संपादन की श्रेष्ठता का दिग्दर्शन है।

आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के "अद्भुत रामायण की राम कथा" में कथा खंडों के साथ विभिन्न उपाख्यान उपन्यस्त किए गए हैं, बहुत ज्ञानप्रद हैं। नवीन शोधपूर्ण रचनाओं एवं रचनाकारों से संपन्न-समृद्ध धर्मायण का निर्बाध प्रसार होता रहे, यही शुभकामना है। अन्य सभी आलेख अध्ययन, अनुशीलन एवं हृदयंगम करने योग्य तथा सराहनीय हैं। नवीन शोधपूर्ण रचनाओं एवं रचनाकारों से संपन्न-समृद्ध धर्मायण का निर्बाध प्रसार होता रहे, यही शुभकामना है।

दामोदर पाठक

सेवानिवृत्त प्राचार्य, ग्राम, पो. खुखरा, जिला-गिरिडीह झारखंड

धर्मायण के शक्ति-विमर्श विशेषांक अंक 106 जैसी गाम्भीर्ययुक्त पत्रिका आचार्य किशोर कुणालजी एवं पं. भवनाथ झा जी द्वारा ही प्रकाशित होना सम्भव है। इसके डिजिटल प्रति का अवलोकन कर मन गद्गद हो गया। शक्ति के उत्पत्तिस्थल माने जानेवाले मिथिलाञ्चल के विद्वानों के मुकुटमणि स्वरूप सम्पादक की लेखनी सारगर्भित बृहत् संकलन से युक्त है, जो शक्ति के समग्रता,

शेषांश पृ. 91पर

आपको यह अंक कैसा लगा? इसकी सूचना हमें दें। पाठकीय प्रतिक्रियाएँ आमन्त्रित हैं। इसे हमारे ईमेल dharmayanhindi@gmail.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं- +91 9334468400 पर भेज सकते हैं।

'धर्मायण' का अगला अंक जगन्नाथ विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। पुरी स्थित भगवान् जगन्नाथ एक मन्दिर ही नहीं, परम्परा के रूप में प्रतिष्ठित है। अन्य स्थलों पर भी हम उसी परम्परा के मन्दिर देखते हैं। भारत की संस्कृति, इतिहास एवं उदात्त परम्परा में इस मन्दिर का अद्भुत योगदान रहा है। अनेक क्षेत्रों से लोग तीर्थयात्रा के लिए **जाते रहे हैं।**

सनातन धर्म में जल तथा जलाशय का संरक्षण

सनातन धर्म में जल एवं जलाशयों के प्रति देवत्व की भावना रही है। हमारे लिए जल केवल हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का सम्मिश्रण H_2O नहीं है। वैशेषिक दर्शन में जल को दूसरा द्रव्य माना गया है- पृथिवी, अप् (जल), तेज (अग्नि), वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा एवं मन ये नौ द्रव्य दर्शन में स्वीकृत हैं। इनमें जल का लक्षण है- **शीतस्पर्शवत्य आपः।** जल में शीतलता होती है। इसके दो प्रकार माने गये हैं- नित्य एवं अनित्य। नित्य जल परमाणु के रूप में हैं तो अनित्य जल कार्य रूप में दृष्टिगोचर हैं। ये पुनः शरीर, इन्द्रिय एवं विषय के भेद से तीन प्रकार के हैं। जल शरीर के रूप में वरुणलोक में प्रतिष्ठित है, इन्द्रिय के रूप में रस का अनुभव करानेवाली जिह्वा के अगले भाग पर विराजमान है तथा विषय के रूप में नदी, समुद्र आदि हैं। अन्नम्भट्ट ने 'तर्कसंग्रह' नामक ग्रन्थ में इस प्रकार उल्लेख किया है-

शीतस्पर्शवत्य आपः। ताश्च द्विविधा नित्या अनित्याश्चेति। नित्याः परमाणुरूपाः। अनित्याः कार्यरूपाः। ताः पुनस्त्रिविधाः शरीरेन्द्रियविषयभेदात्। शरीरं वरुणलोके। इन्द्रियं रसग्राहकं रसनं जिह्वाग्रवर्ति। विषयः सरित्समुद्रादिः॥[1]

जल एवं जलाशय के देवता वरुण

इस प्रकार, जल का जो देवमय शरीर है, वह वरुणलोक में प्रतिष्ठित है। भविष्य-पुराण के मध्यम पर्व भाग 2 अध्याय 19 में वापी, कूप, तडाग आदि के उत्सर्ग करने का विस्तृत विधान किया गया है। वहाँ संकल्प-वाक्य भी उपलब्ध है, जिसमें स्पष्ट है कि ये सभ प्रकार के जलाशय वरुणदैवत, जिनके देवता वरुण हों, कहे गये है।

ओमित्यादिश्रीकृष्णद्वैपायनाभिधान वेदव्यासप्रणीत भविष्यपुराणोक्त फलप्रप्तिकामश्चतुष्कोणाद्य-वच्छिन्न-मत्कारित-पुष्करिणीजलमेतदूर्जितं गंधपुष्पाद्यर्चितं वरुणदैवतं सर्वसत्त्वेभ्यः स्नानावगाहनार्थ-महमुत्सृजे॥233॥

ततो वरुणसूक्तेन वरुणं नागसंयुतम्॥
मकरं कच्छपं चैव तोयेषु परिनिक्षिपेत्॥234॥
पूजयेद्वरुणं देवमर्घ्यं दद्याद्विशेषतः॥

यहाँ संकल्प के बाद ऋग्वेदोक्त वरुणसूक्त से हाथी पर चढ़े हुए वरुण देवता का ध्यान करें, तथा मकर, कच्छप जल में छोड़ दें। इसके बाद वरुण की पूजा कर विशेषार्घ्य दें। इस प्रकार यह भी कहा जाता है कि रात्रि में स्नान निषिद्ध है, क्योंकि वरुण देवता सोये हुए रहते हैं।

[1] अन्नम्भट्ट, तर्कसंग्रह, यशवन्त वासुदेव यथल्ये (सम्पादक), 1918ई., बम्बई संस्कृत सीरीज, बम्बई, पृ. 7-8

जलाशयों को पवित्र रखने के लिए नियम

सनातन धर्म में सभी प्रकार के जलाशयों को शुद्ध एवं पवित्र रखने के नियम बनाये गये थे। प्राचीन काल में सामान्य लोग पैखाना-पेशाब के लिए बाहर जाते थे, लेकिन किन स्थानों पर मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए, उसके लिए नियम बनाये गये थे। मित्रमिश्र ने 'वीरमित्रोदय' में मनुस्मृति के वचन को उद्धृत किया है-

हल से जोती गयी खेत में, जल में, तथा चिता की जगह अथवा ईंट आदि से बने किसी चैत्य पर तथा पहाड़ पर पेशाब न करें- **न फालकृष्टे न जले न चित्यां न च पर्वते।**[2] यहीं आगे कहा गया है कि **"न नदीतीरमासाद्य न च पर्वत मस्तके।"**[3] मित्रमिश्र आगे देवल को उद्धृत कर लिखते हैं कि सूखी ही वापी, कूप, नदी, गाय के रहने का स्थान, जल, मार्ग, भस्म, अग्नि, जहाँ काम्य कर्म किये गये हों, श्मशान इन स्थलों पर पैखाना-पेशाब नहीं करना चाहिए।

वापीकूपनदीगोष्ठचैत्याम्भः पथि भस्मसु।
अग्नौ काम्ये श्मशाने च विण्मूत्रं न समाचरेत्।।[4]

कूर्मपुराण तथा यम-स्मृति में भी यही बात आयी है। यम-स्मृति के वचन में जलाशयों के चार प्रकार भी उल्लिखित हैं – पल्वल, तड़ाग, नदी तथा प्रस्रवण। मित्रमिश्र ने पल्वल को छोटा तालाब तथा तड़ाग को विशाल तालाब माना है।[5] आगे पैठीनसि एवं दक्ष के वचन को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि पैखाना-पेशाब के बाद शुद्धि के लिए सीधे जलाशय से जल नहीं लेना चाहिए, यानी हाथ से सीधे जल लेकर शौच क्रिया नहीं करनी चाहिए, बल्कि उससे जल निकालकर जमीन पर आकर करना चाहिए- **तीर्थे शौचं न कुर्वीत कुर्वीतोद्धृतवारिणा।**[6] आदित्य-पुराण का मत है कि यदि मान लीजिए किसी छोटा गड्ढा में जल है, उससे जल निकालना सम्भव नहीं है, तो हाथ से भी शौच कर सकते हैं, किन्तु जिस स्थान पर शौचक्रिया की गयी है, उसकी शुद्धि करें- **यस्मिन् स्थाने कृतं शौचं वारिणा तत्तु शोधयेत्।**[7]

अतिप्रचलित धर्मशास्त्रीय ग्रन्थ 'धर्मसिन्धु' में व्यवस्था दी गयी है कि जलाशय से कम से कम 12 हाथ की दूरी पर मूत्रत्याग करना चाहिए, यदि स्थान है तो 16 हाथ की दूरी रखें तथा इससे चार गुना दूरी पर ही मलत्याग करें। ये सारे नियम हमें प्राचीनकाल में जलाशय को शुद्ध रखने के प्रयास के इंगित करते हैं।

हस्तान् द्वादश संत्यज्य मूत्रं कुर्याज्जलाशयात्।
अवकाशे षोडश वा पुरीषे तु चतुर्गुणम्।।[8]

जलाशय निर्माण की फलश्रुति

जलाशय निर्माण की फलश्रुति अनेक स्थानों पर उपलब्ध हैं, किन्तु सबसे अधिक विस्तार के साथ महाभारत[9] के अनुशासन पर्व में अध्याय संख्या 99 में युधिष्ठिर के प्रश्न पर भीष्म वापी, कूप तड़ाग आदि के निर्माण की फलश्रुति बताते हैं। इससे कुछ श्लोक को हेमाद्रि ने भी दानखण्ड में उद्धृत किया है। साथ ही, वैखानस आगम की भृगुसंहिता के 35वें अध्याय में इसे अविकल संकलित कर लिया गया है।

औदकानि च सर्वाणि प्रवक्ष्याम्यनुपूर्वशः।।111।।

2. मित्र मिश्र, वीरमित्रोदय, खण्ड 2, आह्निक प्रकाश, पर्वतीय नित्यानन्द शर्मा (सम्पादक), 1910 ई., चौखम्भा संस्कृत बुक डिपो, बनारस, पृ. 33

3. तदेव 4. तदेव 5. तदेव, पृ. 34 6. तदेव, पृ. 43-44 7. तदेव

8. काशीनाथोपाध्याय, धर्मसिन्धु, कृष्णजी रामचन्द्र शास्त्री नवरे (सम्पादक), 1888ई., निर्णय सागर प्रेस बम्बई, पृ. 194

9. महाभारत, भाग 4, एशियाटिक सोसायटी बंगाल, 1839, पृ. सं. 104

तटाकानां च वक्ष्यामि कृतानां चापि ये गुणाः। त्रिषु लोकेषु सर्वत्र पूजनीयः प्रतापवान्॥112॥

अब मैं सभी प्रकार के जलाशयं के बारे में बारी-बारी से कहता हूँ। सबसे पहले तड़ाग के बारे में कहता हूँ कि जो तड़ाग का निर्माण कराते हैं, वे तीनों लोकों में हर जगह पूजित तथा प्रतापी होते हैं।

अथ वा मित्रसदनं मैत्रं मित्रविवर्धनम्। कीर्तिसंजननं श्रेष्ठं तटाकानां निवेशनम्॥113॥

तड़ाग का निर्माण सूर्यलोक के समान है, सूर्य के समान है। वह सासंसारिक मित्रता को बढ़ाता है।

धर्मस्यार्थस्य कामस्य फलमाहुर्मनीषिणः।तटाकं सुकृतं देशे क्षेत्रमेकं महाश्रयम्॥114॥

उन्हें धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति होती है। एक स्थान में सुन्दर तालाब के निर्माण से पूरा क्षेत्र सब के लिए विशाल आश्रय बन जाता है।

चतुर्विधानां भूतानां तटाकमुपलक्षयेत्। तटाकानि च सर्वाणि दिशन्ति श्रियमुत्तमाम्॥115॥

चार प्रकार के प्राणियों के लिए तड़ाग को मानना चाहिए। सभी तालाब उत्तम लक्ष्मी की प्राप्ति कराता है।

देवा मनुष्या गन्धर्वाः पितरो यक्षराक्षसाः।स्थावराणि च भूतानि संश्रयन्ति जलाशयम्॥116॥

देवता, मनुष्य, गन्धर्व, पितर, यक्ष, राक्षस, स्थावर और सभी प्राणीगण जलाशय में वास करते हैं।

तस्मात्तांस्तु प्रवक्ष्यामि तटाके ये गुणास्स्मृताः। या च तत्र फलावाप्तिरृषिभिस्समुदाहृता॥117॥

इसलिए तड़ाग के जो गुण कहे गये हैं और ऋषियों के द्वारा निर्माण करने के जो फल कहे गये हैं, वे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं।

वर्षाकाले तटाके तु सलिलं यस्य तिष्ठति। अग्निहोत्रफलं तस्य फलमाहुर्मनीषिणः॥118॥

शरत्काले तु सलिलं तटाके यस्य तिष्ठति। गोसहस्रस्य सम्प्रेत्य लभते फलमुत्तमम्॥119॥

हेमन्तकाले सलिलं तटाके यस्य तिष्ठति। स वै बहुसुवर्णस्य यज्ञस्य लभते फलम्॥120॥

यस्य वै शैशिरे काले तटाके सलिलं भवेत्। तस्याग्निष्टोमयज्ञस्य फलमाहुर्मनीषिणः॥121॥

तटाकं सुकृतं यस्य वसन्ते तं महाश्रयम्। अतिरात्रस्य यज्ञस्य फलं स समुपाश्नुते॥122॥

निदाघकाले पानीयं तटाके यस्य तिष्ठति। वाजिमेधफलं तस् फलं वै मुनयो विदुः॥123॥

वर्षाकाल में जिनके तड़ाग में जल रहे तो वे अग्निहोत्र का फल पाते हैं। शरत्काल में जल रहे तो उन्हें सहस्र गोदान का फल मिलता है। हेमन्त काल में भी जिनके तड़ाग में जल रहता हो, वे बहुत सुवर्ण दक्षिणा के साथ यज्ञ कराने का फल पाते हैं। यदि शिशिर काल में भी जल रहे, तो उसके लिए अग्निष्टोम यज्ञ कराने का फल कहा गया है। यदि वसन्त काल में भी महान् आश्रय वाले तड़ाग में जल रहे तो उन्हें अतिरात्र यज्ञ का फल मिलता है। जिनके द्वारा खुदाये गये तड़ाग में ग्रीष्म ऋतु में भी जल रहे वे तो अश्वमेध यज्ञ का फल पाते हैं।

स कुलं तारयेत्सर्वं यस्य खाते जलाशये। गावः पिबन्ति सलिलं साधवश्च नरास्सदा॥124॥

वे अपने कु ल का उद्धार कर देते हैं, क्योंकि उनके तड़ाग में गायें, साधुगण तथा मनुष्य जल पीते हैं।

तटाके यस्य गावस्तु पिबन्ति तृषिता जलम्। मृगपक्षिमनुष्याश्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥125॥

जिनके तड़ाग में प्यासी गायें तथा मृग, पक्षी, पशु तथा मनुष्य जल पीते हों, वे अश्वमेध यज्ञ का फल पाते हैं।

यत्पिबन्ति जलं तत्र स्नायन्ते विश्रमन्ति च। तटाकदस्य तत्सर्वं प्रेत्यानन्त्याय कल्पते॥126॥

जो वहाँ जल पीते हैं, स्नान करते हैं, विश्राम करते हैं, उसके सारे फल तड़ाग खुदबाने वाले व्यक्ति को अनन्त काल के लिए जाता है।

दुर्लभं सलिलं चेह विशेषेण परत्र वै। पानीयस्य प्रदानेन प्रीतिर्भवति शाश्वती॥127॥

इस लोक में तथा विशेष रूप में पीने योग्य जल दुर्लभ होता है, अतः पीने लायक पानी देने से शाश्वत प्रेम होता है।

तटाके यस्य पानीयं पानीयाय जगत्पतेः। तस्य पुण्यफलं वक्तुं नालं देवास्सहानुगाः॥128॥

जिसके तड़ाग का जल जगत् के स्वामी को अर्पित किया जाता हो, उसके पुण्य का फल कहने में अपने अनुसरणकर्ताओं के साथ देवता भी कहने में असमर्थ हैं।

तटाके यस्य पानीये सायं प्रातर्द्विजातयः।स्नात्वा कुर्वन्ति कर्माणि तस्य नाकेस्थितिर्भवेत्॥129॥

जिसके तडाग के जल में द्विज प्रातःकाल तथा सन्ध्याकाल स्नान कर संध्यावन्दनादि कर्म करते हैं, उनका वासस्थान स्वर्ग में होता है।

राजा के द्वारा जलाशय की मरम्मत एवं जीर्णोद्धार

इस विषय में सबसे अधिक प्रखर फलश्रुति हमें क्षत्रप रुद्रदामा के शिलालेख[10] (150 ई.) में मिलता है। गिरिनार पर्वत स्थित सुदर्शन झील मूल रूप से चन्द्रगुप्त मौर्य के अन्तर्वर्ती शासक पुष्यगुप्त के द्वारा बनवाया गया था। बाद में अशोक के काल में यवनराज तुषास्फ के द्वारा इससे नहरें निकाली गयीं थीं। इस प्राचीन झील का बाँध बाढ़ के कारण टूट गया था, जिससे कारण प्रजा में जल-संकट उपस्थित हो चुका था। रुद्रदामा ने प्रजा से अतिरिक्त कर लिये विना अथवा प्रजा जन से दया करने का आग्रह किये विना तथा उनसे बेगार कराये विना अपने कोष से सारा धन व्यय कर इस झील को तीन गुना बढाकर बनवाया, जिससे रुद्रदामा के यश में वृद्धि हुई।

जलाशय को हानि पहुँचाने पर दण्ड-विधान

जलाशय के बाँध को यानी भिंडा को तोड़नेवाले के लिए मनु ने मृत्युदण्ड का विधान किया है। भले ही यह आज प्राचीन भारत का क्रूर दण्ड प्रतीत होता हो, परन्तु इससे जल-संरक्षण के प्रति राजा की चिन्ता तो अवश्य झलकती है।

तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन वा। यद् वाऽपि प्रतिसंस्कुर्याद् दाप्यस्तूत्तमसाहसम्॥279॥[11]

तडाग को तोड़नेवाले का वध जल में डुबाकर अथवा अन्यविधि से करना चाहिए। लेकिन यदि वह अपने द्वारा तोड़े गये अंश की मरम्मत करवा देता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड देना चाहिए।

याज्ञवल्क्य[12] ने लिखा है कि गले में पत्थर बाधकर जल में डुबाकर वध करना चाहिए। अपरार्क द्वारा उद्धृत यम के वचन में एक नयी बात सामने आती है कि यदि कोई व्यक्ति तालाब में जल पहुँचने के रास्ते को रोकता है, तो उसे उत्तम साहस का दण्ड देना चाहिए। 'विवादरत्नाकर' में तो चण्डेश्वर ने तालाब के समीप कचड़ा फेंकने वालों के लिए भी दण्ड का विधान किया है कि उन्हें 100 पण जुर्माना देना होगा तथा उसकी सफाई भी करनी होगी- **पथ्युद्यानोदकसमीपेषु अशुचि-उत्करादित्यागे पणशतं तच्चापास्येति।**[13] आगे चण्डेश्वर ने कात्यायन को उद्धृत कर लिखा है कि तड़ाग, उद्यान तथा तीर्थ अर्थात् नदी के घाट को जो गंदी वस्तुओं से यानी कचड़ा फेंक कर नष्ट करता है, उससे सफाई कराना चाहिए तथा जुर्माने की पूर्वोक्त राशि यानी 100 पण दण्ड के रूप में लेनी चाहिए-

[10] सहाय, शिवस्वरूप, भारतीय पुरालेखों का अध्ययन, भाग 1, 1977ई. मोतीलाल बनारसी दास (प्रकाशक), पृष्ठ संख्या 209-217

[11] मनुस्मृति, 9.279

[12] याज्ञवल्क्य स्मृति, 2.278, वीरमित्रोदय एवं मिताक्षरा सहित, नारायण शास्त्री खिस्ते, 1930, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, पृ. 725

[13] चण्डेश्वर, विवादरत्नाकर, कमलकृष्ण स्मृति, 1931, एसियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल, कलकत्ता, तीर्थ, पृष्ठ संख्या 220

तडागोद्यानतीर्थानि योऽमेध्येन विनाशयेत्।
अमेध्यं शोधयित्वा तु दण्डयेत् पूर्वसाहसम्॥[14]

इसी स्थल पर चण्डेश्वरोक्त मनुस्मृति के वचन के अनुसार यदि कोई व्यक्ति भय दिखाकर घर, तालाब, बगीचा तथा खेत को अपने कब्जे में कर ले, तो 500 पण दण्ड का भागी होता है, लेकिन यदि अनजान होने कारण अपना समझ ले तो 200 पण दण्ड का भागी होता है।[15] यह वर्तमान उपलब्ध मनुस्मृति के 8वें अध्याय का 264वाँ श्लोक है।[16] दण्डविधान में बाँध, कूप, वापी, तड़ाग आदि का निर्माण करनेवाले को यह छूट दी गयी है कि यदि अपनी जमीन में तालाब बना रहे हैं और दूसरे की थोड़ी जमीन होने के कारण बाधा पहुँच रही है, तो कार्य नहीं रोका जाना चाहिए।[17] इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में जलाशयों के निर्माण तथा उसके संरक्षण के प्रति हमारे पूर्वज बहुत अधिक संवेदनशील रहे हैं।

तालाबों में जाठि यष्टि का महत्त्व

तालाब के बीच में जामुन या सँखुआ का एक खम्भा गाड़ा जाता है। यह विधि तालाब के लिए किये गये यज्ञ के दिन सम्पन्न होती है। इस खम्भे को जाठि < यष्टि (संस्कृत) कहते हैं। मान्यता है कि जिस तालाब में यह जाठि गाड़ा हुआ है, उसी तालाब के जल का उपयोग धार्मिक कार्यों में हो सकता है। प्रचलित मान्यता के अनुसार जिसमें यह जाठि नहीं गाड़ा गया हो, उसे कुँवारी पोखरा कहने का भी रिवाज है। इस मान्यता के कारण जाठि गाड़ने की प्रक्रिया को पोखरा के विवाह से जोड़ा जाता है। वास्तविकता है कि तालाब खुदवाने वाले अपनी जमीन पर अपने धन का व्यय करते हैं, अतः वह उनकी सम्पत्ति होती है। जब तक उस तालाब को सार्वजनिक हित में वे उत्सर्ग नहीं करते हैं तब तक दूसरे कोई व्यक्ति उस तालाब के उपयोग का अधिकारी नहीं है। यदि ऐसी स्थिति में कोई व्यक्ति उस तालाब का उपयोग करता है तो वह दूसरे की सम्पत्ति के उपयोग करने के पाप का भागी होता है।

जिस दिन तालाब का यज्ञ किया जाता है, उस दिन यजमान संकल्प लेकर उसका उत्सर्ग करते हैं तथा उसके बाद से तडाग-निर्माणरूप पूर्त के लिए श्रुति-स्मृति में कहे गये पुण्यों के वे भागी होते हैं तथा सामान्य व्यक्ति उस तालाब के जल का उपयोग स्नान, देवताभिषेक आदि के लिए अर्ह हो जाते हैं। तालाब कूप आदि खुदबाने वालों के फल का विस्तार से वर्णन भविष्यपुराण के उत्तर पर्व के 217वें अध्याय में आया है।

अब यहाँ प्रश्न उठता है कि अज्ञात व्यक्ति कैसे समझेगा कि इस तालाब को पूर्त के अन्तर्गत दान किया गया है अथवा नहीं- इसी के संसूचन के लिए तालाब के बीच में जाठि या यष्टि गाड़ दिया जाता है। यह लगभग 300 वर्षों तक रहता है। इसकी लंबाई तालाब की जल-ग्रहण क्षमता के बराबर होती है। व्यावहारिक रूप से तालाब में जल की कमी होने पर यह यष्टि ऊपर से टूटते जाता है। जो अंश पानी के अंदर रहता है, वह जल्दी नहीं टूटता। हम तालाब की जल-ग्रहण क्षमता तथा जाठि की वर्तमान लंबाई को देखकर तालाब की प्राचीनता का भी अनुमान लगा सकते हैं।

सनातन धर्म में तालाब में स्नान की विधि

तालाब एवं में गाद जम जाने से वह धीरे धीरे भरता जाता है। अतः सनातन धर्म में इसके लिए व्यवस्था की गयी है कि कूप तथा तालाब में स्नान, तर्पण करने से पूर्व उससे मिट्टी निकालकर ऊपर कर लेना चाहिए। यह व्यावहारिक रूप से सफाई

[14] तदेव, पृ. 220 [15] तदेव, पृ. 220

[16] मनुस्मृति, नवटीकोपेत, जयन्तकृष्ठ हरिकृष्ठ दवे (सम्पादक), चतुर्थ भाग, पृष्ठ संख्या-449

[17] चण्डेश्वर, उपरिवत्, पृष्ठ संख्या- 222

जाठि के साथ तालाब

की प्रक्रिया है, जिसके सम्बन्ध में शास्त्रकारों ने व्यवस्था दी है। याज्ञवल्क्य के अनुसार दूसरे के द्वारा खुदवाये गये तालाब में से मिट्टी के पाँच पिण्ड निकालने के बाद ही उसमें स्नान करना चाहिए-

पञ्चपिण्डाननुमुद्धृत्य न स्नायात् परवारिषु।
स्नायान्नदीदेवखातह्रदेषु च सरःसु च॥

अर्थात् पाँच पिण्ड के बराबर मिट्टी निकाले विना दूसरे के जलाशय में स्नान नहीं करना चाहिए। लेकिन नदी, देवता द्वारा निर्मित जलाशय तथा प्राकृतिक झील में उसके विना भी स्नान कर सकते हैं। इस विषय में लक्ष्मीधर ने आगे व्याख्या की है कि पैठीनसि तथा बौधायन ने जो पाँच पिण्ड मिट्टी तथा तीन घट जल निकालने की बात कही है वह सेतु एवं कूप के सम्बन्ध में है। विष्णुस्मृति में जो पाँच पिण्ड मिट्टी बाहर निकालने की बात है, वह कृत्रिम जलाशय के प्रसंग में है। यह नियम स्नान के प्रसंग में है, किन्तु यदि उस जल से तर्पण करते हैं, तो वापी, कूप तथा तड़ाग से क्रमशः सात, पाँच तथा तीन पिण्ड मिट्टी निकालना चाहिए –ऐसा शंखलिखित के द्वारा कहा गया है-

पैठीनसि बौधायनवचनात् स्नानकर्तुर्मृत्पिण्डाम्बुघटत्रयोद्धरणं सेतुकूपविषयम्। पञ्चपिण्डोद्धरणं तु विष्णूक्तमेतदतिरिक्तकृत्रिमजलविषयम्। यत्तु शङ्खलिखितोक्तं सप्तपञ्चत्रयमृत्पिण्डोद्धरणं तत्तर्पणार्थं यथासंख्यं वापीकूपतडागविषयम्।[18]

शङ्खलिखित स्मृति के अनुसार यदि दूसरे के द्वारा खोदे गये तालाब में उपर्युक्त विधि से पाँच पिण्ड निकालकर भी हम स्नान करते हैं तो केवल शरीर की शुद्धि होती है, स्नान का फल नहीं होता है। स्नान करने के बाद अग्नि का सेवन करना तथा दूसरे के जल में स्नान करने से केवल शरीर की शुद्ध होती है, स्नान का फल नहीं होता

स्नातस्य वह्नितप्तेन तथैव परवारिणा।
शरीरशुद्धिर्विज्ञेया न तु स्नानफलं भवेत्॥[19]

इस प्रकार हम देखते हैं कि सनातन धर्म में जलाशयों को शुद्ध रखने के लिए छोटी-छोटी बातों पर भी कड़े नियम बनाये गये हैं। ये आचार के रूप में प्रचलित थे। आज जब हम गाँवों में तालाबों को भऱते जा रहे हैं, सारे कचरे हम उसी में फेंकते जा रहे हैं, तालाबों में बाहर से जल आने और निकलने के नाले को भरकर घर बनाते जा रहे हैं। इसी प्रकार, कूपों के साथ भी हमने व्यवहार किया है। कूप के रास्ते वर्षाजल अंदर जाकर भू-गर्भ जल बनते थे। हमने सभी कुओं को भर दिया, चापाकल और बोरिंग का व्यवहार हम करने लगे, तो हम जल-संकट को बुला रहे हैं।

इस संक्षिप्त विवेचना में हम देखते हैं कि सनातन धर्म में जल के प्रति हमारी अनन्य आस्था रही है। जल का संरक्षण, जलाशयों की सफाई आदि हमारे धर्म के अंग रहे हैं। आज जब इन्हें धर्म न मानकर उपभोक्तावादी प्रवृत्ति दिखाने लगे हैं तो हमें शुद्ध पानी मिलना दूभर हो गया है। हम आज पेय जल को व्यापार की वस्तु के रूप में देखने लगे हैं।

***

[18] लक्ष्मीधर, कृत्यक्लपतरु, नियतकालकाण्ड, खण्ड III, के.वी. रंगस्वामी आयंगर, 1950 ई., गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा, पृ. सं. 43

[19] तदेव, पृ. 50

वैदिक साहित्य में जल-विमर्श

डॉ.धीरेन्द्र झा*

जल के दिव्य रूपों तथा अनेक भेदों का वर्णन ऋग्वेद से ही प्रारम्भ हो जाता है। वेदों में एक ओर दिव्य, आन्तरिक्ष और पार्थिव के रूप में 3 भेद तथा अम्भ, मरीची, भर और आप् के रूप में 4 भेद किये गये हैं तो दूसरी ओर नदियों के भोगोलिक स्वरूप का भी वर्ण हमें मिलता है। इस प्रकार वैदिक साहित्य में साध्य एवं साधन- दोनों के रूप में जलतत्त्व पर विमर्श हुआ है।

वेद अनन्त ज्ञान-विज्ञान की निधि है। मनु ने कहा है- **"भूतं भवद्भविष्यञ्च सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति।"**[1] अर्थात् वैदिक विज्ञान सभी कालों व समस्त परिस्थितियों में अनुकरणीय है।

वेदों में अनेकानेक वैज्ञानिक विषयों का विस्तृत विवेचन किया गया है यथा- जलतत्त्व, अग्नितत्त्व, वायुतत्त्व, ब्रह्मतत्त्व, पृथिव्यादिलोकभ्रमण-विज्ञान, आकर्षण-विज्ञान प्रकाश्य -प्रकाशक विज्ञान, सृष्टि विज्ञान, गणित विज्ञान, नक्षत्रविज्ञान, नौका-विमानादि विज्ञान सौर विज्ञान मनोविज्ञान, ग्रहविज्ञान और औषधि विज्ञानादि वेद की सृष्टि विज्ञान भी कहा जाता है, क्योंकि मानव सभ्यता के इस प्रथम ग्रन्थ ऋग्वेद में सृष्टि के समग्र तत्त्व व रहस्यों का विशद विवेचन किया गया है।

वैदिक ऋषियों ने इस संपूर्ण ब्रह्माण्ड को "सर्वमापोमयं जगत्" कहकर संपूर्ण सृष्टि का कारणभूत जल को ही माना है। सृष्टि की उत्पति जल से ही हुई है। सृष्टिकर्ता परमात्मा जब एकाकी था, तब उसने विचार किया- "एकोऽहं बहु स्याम।" अर्थात् में एक से अनेक हो जाऊँ। शतपथ ब्राह्मण के 6ठे अध्याय में सृष्टि-प्रक्रिया के क्रम में बताया गया है-

"सोऽकामयत भूय एव स्यात्प्रजायेतेति। सोऽश्राम्यत स तपोऽतप्यत। स: श्रान्तस्तेपान: फेनमसृजत। मृदम् शुष्काऽप-मूसिकतं शर्करामश्मानमयो हिरण्यमोषधिवनस्पत्यसृजत। तेने मां पृथिवीं प्राच्छादयत॥13॥"[2]

अर्थात् समस्त सृष्टि में सर्वप्रथम जल का आविर्भाव हुआ शतपथ ब्राह्मण के ग्यारहवें काण्ड में कहा गया है कि **"आपो वा इदमग्रे सलिलमेवास॥"**[3] अर्थात् जगत्कर्ता ने सृष्टि की इच्छा करते हुए सबसे पहले जल की ही रचना की। इसका विस्तृत निरुपण करते हुए महामहोपाध्याय पं. मधुसूदन ओझा ने अपने ग्रन्थ 'अम्भोवाद' में लिखा है-

अद्भ्यो हि सृष्टि: प्रबभूव सर्वा सर्वं यदाप्नोत् तत आप एता:।
यतोऽवृणोत्सर्वमतश्च तद् वारतो वदन्त्यावरणात् प्रसृष्टिम्॥2॥[4]

वायुपुराण में भी बताया गया है कि विविध प्रजाओं की सृष्टि के लिए भगवान् ने जल की रचना की-

1 मनुस्मृति, 12.97
2 शतपथ ब्राह्मण 6. 1.1.13, सत्यव्रत शर्मा सामश्रमी (सम्पादक), भाग-6, 1908, कोलकाता, पृष्ठ सं. 5
3 (श. ब्रा. 11.1.6.1)
4 पं. मधुसूदन ओझा सीरीज-9 म.म. मधुसूदन ओझा, अम्भोवाद, डॉ. दयानन्द भार्गव(सम्पादक), पं. मधुसूदन ओझा प्रकोष्ठ, संस्कृत विभाग जयनारायणव्यास विश्वविद्यालय जोधपुर, 2002 ई. पृ. 56.

*वेदाचार्य, राष्ट्रीय संयोजक, संस्कृत शिक्षा, विद्याभारती, नई दिल्ली, दूरभाष, 9939467860

ततः स्वयम्भूर्भगवान् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥35॥[5]

मनुस्मृति में मनु ने भी इसी क्रम को बताया है यथा-

सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यं अवासृजत्॥1.8॥[6]

गोपथ-ब्राह्मण के मतानुसार- जब परमात्मा ने सृष्टि का चिंतन करें इसकी पूर्ति के लिए श्रम और तप किया, जिसके कारण उसके ललाट से स्वेद (पसीना की धारा का प्रवाह हुआ।

अस्य श्रान्तस्य तप्तस्य सन्तप्तस्य सर्वेभ्यो रोमगर्तेभ्यः पृथक् स्वेदधाराः प्रास्यन्दत।"[7]

ऐतरेय ब्राह्मण में बताया गया है कि आत्मा रूप मूल तत्त्व के स्वेद से निर्गत जो जल उत्पन्न हुआ, वह चार अवस्थाओं मैं चार नामों से चारों ही लोकों में व्याप्त है। उनके नाम है- अम्भ, मरीची, भर और आप्। इनमें अम्भ वह जल है जो. सूर्यमण्डल से भी ऊर्ध्व प्रदेशों- महः, जनः, तपः, इत्यादि लोकों में परिव्याप्त है। अन्तरिक्ष में जो जल व्याप्त है, वह मरीचि रूप है तथा पृथ्वी के निर्माण व उत्पादन में जो जल अग्रसर होता है वह भर है, और पृथ्वी पर प्रवाहित होनेवाला या पृथ्वी को खोदने पर निकलने वाला जल आप: नाम से प्रसिद्ध है। वेदों में जल की अनेक अवस्थाओं का वर्णन हुआ है यथा

ॐ या दिव्या आप: पयसा सम्बभूवुर्या आन्तरिक्षा उत पार्थिवीया:।
हिरण्यवर्णा यज्ञियास्तान आप: शिवा: शंस्योना: सुहवा भवन्तु॥[8]

अर्थात् जो जल अपने सारभूत रस से युक्त है और जो अन्तरिक्ष तथा भूमि पर अवस्थित जल है, वह सुवर्म के समान वर्णवाला पवित्र जल यज्ञ के उपयुक्त है। वह जल हमारे लिए कल्याणकारी एवं सुख देनेवाला बनें। इस मन्त्र में तीन प्रकार के जल का वर्णन हुआ है- एक दिव्य अर्थात् द्युलोक (सूर्यलोकस्थ) का दूसरा अन्तरिक्षस्थ का और तीसरा भूमि पर अवस्थित जल का। ऋग्वेद में सप्तम मंडल के 49 सूक्त में ऋषि वसिष्ठ मैत्रावरुणि ने पार्थिव जल (भूमिसम्बन्धी) के तीन विभाग बताये है"

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥2॥[9]

जो दिव्य जल आकाश से (वृष्टि के द्वारा) प्राप्त होते हैं, जो नदियों में सदा गमनशील हैं, जिन्हें खोदकर कूपादि से निकाला जाता है और जो स्वयं स्रोतों के द्वारा प्रवाहित होकर समुद्र की ओर जाते हैं, वे दिव्यतायुक्त जल हमारी रक्षा करें। ये सारे ही अभिस्थ जल के ही अवान्तर विभाग है।

ब्राह्मण, उपनिषद, मनुस्मृति, पुराणादि में सृष्टि की उत्पत्ति के आरंभ में ही अप् की उत्पत्ति कही गयी है। अप् नाम यद्यपि जल का ही है, किन्तु वहाँ यह स्थल जल नहीं, अपितु रस रुप द्रव्य पदार्थ वहाँ अप् या अम्भः शब्द का अर्थ है। यह अप् ब्रह्माण्ड में सर्वत्र व्याप्त है। वेदमन्त्रों में बताया गया है कि चन्द्रमा अप् के भीतर होकर दौड़ता है। सूर्यलोक में तथा सूर्य में भी अप् विद्यमान है। सूर्य और अग्नि अप् में ही पैदा होते हैं। जब भगवान् सूर्य उदयाचल में आते हैं तब उनकी किरणों के कारण अप् (जल) अपना स्थान छोडकर दूर हट जाता है, किन्तु जब जिस जिस प्रदेश में सूर्य की किरणों मन्द हो जाती है वहाँ वह अप् इकठा हो जाता है और घनीभूत होकर स्थूल जल के रूप बरस जाता है। वैदिक ऋषियों को समुद्र, नदी व

5 (हरिवंश, 1.1.35) 6 (मनुस्मृति, 1.18)

7 (गोपथ ब्राह्मण 1.2, जीवानन्द विद्यासागर(सम्पादक), 1891, कोलकाता, पृ. 1

8 गरुड पुराण, आचारकाण्ड, 218.9 में वैदिकमन्त्र के रूप में उद्धृत।

9 ऋग्वेद, 7.49.2

पुष्करणियों से अत्यन्त ही लगाव था। इसी कारण ऋषियों के आश्रम और बस्तियाँ नदियों के किनारे ही विकसित हुए। ऋग्वेद में सर्वत्र जल को चार सूक्तों में आपो देवता कहकर संबोधित किया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के तेईसवें सूक्त, जिसके द्रष्टा मेधातिथि काण्व हैं, इसके 16-23वें मन्त्रों में जल की स्तुति की गयी है। इसी के सप्तम मण्डल के 47वें तथा 49वे सूक्त में मन्त्रद्रष्टा ऋषि वसिष्ठ मैत्रावरुणि ने 'आपो' देवरूप जल की स्तुति की है। यहाँ 49वें सूक्त में समुद्र को जलाशयों में ज्येष्ठ माना गया है। यथा-

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु॥1॥[10]

समुद्र जिनमें ज्येष्ठ है, वे जल प्रवाह, सदा अन्तरिक्ष से आनेवाले है। इन्द्रदेव ने जिनका मार्ग प्रशस्त किया है, वे जलदेव हमारी रक्षा करे।

ऋग्वेद में ही अनेक समुद्रों का विवरण पाया जाता है। ऋग्वेद (3.33) के द्वितीय व तृतीय मन्त्रों के अनुसार शुतुद्रि (सतलुज) और विपाश (व्यास) नाम की दो नदियाँ रथियों की तरह समुद्र में गिरती हैं। यह पंजाब से दक्षिण का राजपूताना समृद्ध था जो आरावली पर्वत के दक्षिण के दक्षिण और पूर्व भागों तक फैला हुआ था। आज भी राजपूताने के गर्भ में खारे जल की झीलें (साँभर) और नमक की तहें इस बात की द्योतक हैं कि किसी समय इस प्रदेश को समुद्र की लहरें प्लावित करती थीं।

ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 36वें सूक्त के मन्त्र से ज्ञात होता है कि पंजाब के पूर्व और पश्चिम में दो समुद्र विद्यमान थे।

वातस्याश्वो वायोः सखा यो देवेषितो मुनिः। उभा समुद्रावाक्षति यश्च पूर्व उतापरः।[11]

अर्थात् मुनि वायुमार्ग से घूमने के लिए अश्वरूप हैं। वे वायु के सहचर हैं। देवता उन्हें पाने की इच्छा करते हैं। वह पूर्व और पश्चिम के दोनों समुद्रों में निवास करते हैं।

ऋग्वेद के दो अन्य मन्त्रों (9. 33.6) और 10. 47.2) में चार समुद्रों का भी उल्लेख पाया जाता है। यथा-

रायः समुद्राँश्चतुरोऽस्मभ्यं सोम विश्वतः।आ पवस्व सहस्रिणः॥6॥[12]

अर्थात् सोम धन सम्बन्धी चारों समुद्रों को चारों दिशाओं से हमारे पास ले आओं और असीम अभिलाषाओं को भी ले आओ। यहाँ चारों समुद्रों का अर्थ है- चारों समुद्रों से युक्त भूखण्ड के स्वामित्व का।

द्वितीय मन्त्र है-

स्वायुधं स्ववसं सुनीथं चतुःसमुद्रं धरुणं रयीणाम्।
चर्कृत्यं शंस्यं भूरिवारमस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः॥2॥[13]

अर्थात् है इन्द्र तुम्हें हम शोभन अस्त्र और शोभन रक्षणकर्ता, सुन्दर नेत्रवाला, चारों समुद्रों को जल से परिपूर्ण करनेवाला, धनधारक बारबार- स्तुत्य और दुखों का निवारक जानते है। तुम हमें विलक्षण धन दो। इस प्रकार समस्त जल शक्ति व संसाधनों पर वैदिक आर्यो का एकाधिकार था।[14]

वैदिक आर्यलोग नदियों के बड़े भक्त थे। वे नदियों के तटों पर रहना बहुत पसन्द करते थे। ऋग्वेद में अनेकानेक नदियों का विवरण आया है।

ऋग्वेद में "सप्त सिन्धवः" और "सप्त स्रवतः" शब्द कई बार आये है जिसका अर्थ है- सात नदियाँ।

इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शुतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया॥5॥[15]

10 ऋग्वेद, 7.49.1 11 ऋग्वेद, 10.136.5 12 ऋग्वेद, 9.33.6 13 ऋग्वेद, 10.47.2 14 (ऋग्वेद, 1.56.2)

वेदमन्त्रों में भी मन वाणी और शरीर के पापों को क्षय करने की इस दिव्यजल से प्रार्थना की गयी है

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि। यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम्॥22॥[16]

महर्षि वाल्मीकि के गंगा स्तोत्र में एक ही श्लोक के द्वारा गंगा तत्त्व का स्फुट वर्णन किया गया है।

ब्रह्माण्डं खण्डयन्ती हरशिरसि जटावल्लिमुल्लासयन्ती
स्वर्लोकादापतन्ती कनकगिरिगुहागण्डशैलात्स्खलन्ती।
क्षोणीपृष्ठे लुठन्ती दुरितचयचमू निर्भरं भर्त्सयन्ती
पाथोधिं पूरयन्ती सुरनगरसरित्पावनी नः पुनातु॥3॥[17]

ब्रह्माण्ड को तोड़कर आती हुई, महादेव जटाजूट को सुशोभित करती हुई स्वर्गलोक से अवतरित होकर सुमेरु पर्वत पर पाषाणों से टकराती हई, पृथ्वी के समस्त पापों को नष्ट करती हुए समुद्र में मिलनेवाली यह दिव्य नदी हम सबको पवित्र करें।

ऐतरेय ब्राह्मण में जल के दिव्य प्रकार आन्तरिक्ष जल का वर्णन करते हुए बताया गया है कि सूर्य, जिसे मारीचि कहा जाता है, यह संपूर्ण अतरिक्ष में व्याप्त आन्तरिक्ष अप् है, जो सूर्य की किरणों के परस्पर रगड़ से प्रादुर्भूत होता है इसे 'यमुना' नाम दिया जाता है। अतएव यमुना सूर्य-किरणों से उत्पन होने के कारण सूर्यपुत्री भी कही जाती है। वैदिक वाङ्मय में गंगा को दिव्य जल ओर यमुना को आन्तरिक्ष जल तथा अन्य समस्त नदियों के जल को पार्थिव जल के अन्तर्गत माना गया है।

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 75वें सूक्त का नाम नदीसूक्त है। इसमें जगती छन्द में 9 मन्त्र हैं, और इसके ऋषि हैं- प्रियमेध पुत्र सिन्धुक्षित। इस सूक्त में जल से परिपूर्ण अनेक नदियों का नाम बताया गया है। इसके पाँचवें मन्त्र में सिन्धु के पूर्वी तट की नदियों के नाम आये हैं और छठे मन्त्र में सिन्धु तथा उसकी पश्चिम सीमा वाली नदियों के नाम हैं। वैदिक साहित्य में इन नदियों के नाम पाये जाते हैं- अंशुमती, अंजसी, अनितभा, असिक्नी, आपया, आर्जीकिया, कुभा, कुलिशी, क्रुमु, गंगा, गौमती, जह्नावी, तृष्टामा, दृषद्वती, परुष्णी, मरुद्वृधा, मेहलू, यमुना, यव्यावती, रथस्या, रसा, वरणावती, वितस्ता, विपशा, विबाली, वीरपत्नी, शिफा, शुतुद्री, श्वेत्या, सदानीरा, सरयू, सरस्वती, सिन्धु, सुदामा, सुवास्तु सुषोमा, सुसर्त्तु, और हरियूपीया।

भारतीय साहित्य में गंगा के जल को अपर ब्रह्माण्ड की जलधारा कहा गया है। गंगा को पुराणों में हजारों वर्ष तक इसका विष्णुपद शिवजटा आदि में रहना लिखा है। विष्णुपुराण में कहा गया है

वामपादाम्बुजाङ्गुष्ठनखस्त्रोतोविनिर्गताम् ।
विष्णोर्बिभार्ति यां भक्त्या शिरसाहर्निशं ध्रुवः॥

ततः सप्तर्षयो यस्याः प्राणायामपरा यणाः।
तिष्ठन्ति वीचिमालाभिरुह्यमानजटाजले॥[18]

हमारे ऋषि-महर्षियों ने अपनी खोज के आधार पर गंगाजल को इसके विशिष्ट गुणों के आधार पर अलौकिक दिव्यजल माना था। महाभारत के भीष्मपर्व में बताया गया है कि-

तस्य शैलस्य शिखरात्क्षीरधारा नरेश्वर।
विश्वरूपाऽपरिमिता भीमनिर्घातनिःस्वना॥28॥

15. ऋग्वेद, 10.75.5
16. ऋ. 1.23.22
17. वाल्मीकि, गङ्गाष्टकम्, श्लोक 3
18. विष्णुपुराण अ.2.8.109-110

पुण्या पुण्यतमैर्जुष्टा गङ्गा भागीरथी शुभा।
प्लवन्तीव प्रवेगेन ह्रदे चन्द्रमसः शुभे॥29॥
तया ह्युत्पादितः पुण्यः स ह्रदः सागरोपमः।
तां धारयामास तदा दुर्धरां पर्वतैरपि॥30
शतं वर्षसहस्राणां शिरसैव महेश्वरः॥3॥क[19]

शास्त्रों में गंगा स्नान करनेवाले को पद-पद में अश्वमेध राजसूय आदि का फल बताया गया है।

इस प्रकार वैदिक आर्यों ने जल के विशिष्ट महत्त्व को जान लिया था। वैदिक वाङ्मय में "सर्वमापोमयं जगत्" कहकर इसके महत्त्व को स्वीकारा है। जल से उत्पन्न होने के कारण ही पृथिवी को पुष्करपर्ण कहा जाता है।

इस प्रकार हमारे जीवन के लिए प्रकृति ने हमें जल के रूप में जिस अमृत की रचना की है, उसकी महिमा का वर्णन हम वैदिक काल से ही करते रहे हैं। जल के जितने भी स्रोत हैं, उनके प्रति हमारी परम आस्था रही है। उन आस्थाओं के लोप होने से हम उसके प्रति अपनी कर्तव्य-भावना को भूल चुके है और जल को एक रासायनिक संरचना मानकर भौतिकवाद के दलदल में फँसते जा रहे हैं।

19 महाभारत भीष्मपर्व, जम्बूखण्ड निर्माण, अध्याय. 6. 28-31

***

लेखकों से निवेदन

'धर्मायण' का श्रावण, 2078 का अंक ब्रह्मा-विशेषांक के रूप में प्रस्तावित है। इसके लिए दिनांक 16 जून, 2021 तक विद्वत्तापूर्ण आलेख आमन्त्रित हैं। त्रिदेवों में ब्रह्मा आदि हैं। इन्हें जगत् का उत्पत्तिकर्ता कहा गया है। वैदिक काल में यज्ञ में ब्रह्मा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे यज्ञ के निरीक्षक तथा अग्नि के संरक्षक कहे गये हैं। वाक् एवं मनस् के बीच विवाद होता है तो वे इन्ही के पास जाती हैं। पुराणों में भी प्रजापति के रूप में उनका उल्लेख हुआ है। साथ ही, जब वे निर्जीव सृष्टि करने लगते हैं तो ब्रह्मा ही विश्वकर्मा बन जाते हैं, अतः दोनों के नाम त्वष्टा, विश्वसृज् आदि समान हैं। हर्षचरित में बाणभट्ट ने सरस्वती के पति के रूप में इनका वर्णन किया है। लेकिन वर्तमान में ब्रह्मा की छवि को लेकर अनेक प्रकार के जो आरोप लगाये जा रहे हैं उनका कितना तक औचित्य है, वास्तविकता क्या है, इसकी विवेचना हेतु विद्वान् लेखकों की दृष्टि का संकलन यहाँ प्रस्तावित है।

वर्तमान अंक में व्यवहृत सन्दर्भ की शैली में लिखित सन्दर्भ के साथ शोधपरक आलेखों का प्रकाशन किया जायेगा। अपना टंकित अथवा हस्तलिखित आलेख हमारे ईमेल dharma-yanhlndl@gmall.com पर अथवा ह्वाट्सएप सं- +91 9334468400 पर भेज सकते हैं। प्रकाशित आलेखों के लिए पत्रिका की ओर से पत्र-पुष्प की भी व्यवस्था है।

प्राचीन काल में जलप्राप्ति के साधन

(मिथिला के सन्दर्भ में)

मूल मैथिली से सम्पादक द्वारा अनूदित

डॉ.(प्रो.) शशिनाथ झा*

आज हमने तालाब को कूड़ादान बना डाला है; कूपों को भरकर उस पर मकान बना लिया, नदियों को तटबन्धों से घेरकर 'हैंगिंग रिवर' बना डाला, पेयजल को व्यर्थ 'बाइपास' कर डाला, तभी तो हम पानी पीने के लिए भी बाजार पर निर्भर हो गये हैं! बाजारवाद की देन हो या विकास के नाम पर अपभ्रष्ट मार्ग, दोनों ही स्थितियों में मनुष्य के साथ-साथ पशु-पक्षी तक प्यासे मर रहे हैं। जल-संकट से जूझते हुए हम भविष्य में और संकटग्रस्त होंगे। लेकिन सनातन धर्म की परम्परा में प्राचीन काल में जल-प्रबन्धन के लिए क्या-क्या उपाय किये गये, वे यहाँ पठनीय हैं।

प्राणरक्षक तत्त्वों में जल अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिए जल के पर्यायवाची शब्दों में जीवन भी एक शब्द है- **पयः कीलालम् अमृतं जीवनं भुवनं जलम्।**[1] इसीलिए नदी के तट पर वास किया जाता रहा है। जल-प्राप्ति के दो स्रोत रहे हैं- 1. प्राकृतिक एवं 2. कृत्रिम। प्राकृतिक स्रोतों में वर्षा, नदी, झरना, झील, स्रोत, एवं देवखात (अनादि काल का अथाह गढ़ा) आते हैं, जो सृष्टि के आदिकाल से आज तक उपयोग में हैं। जल-प्राप्ति की दृष्टि से विश्व में देश दो प्रकार के होते हैं[2]-

1. देवमातृक- देव (मेघ) माता की तरह जहाँ पालन कर रहे हैं वह देश हुआ देवमातृक, केवल मेघ के जल से सिंचाई वाला देश।

2. नदीमातृक- नदी अथवा तालाब से सिंचित देश। यहाँ लोग केवल मेघ के भरोसे नहीं रहते हैं। जैसे मिथिला के वर्णन में लिखा गया है-

नदीमातृक देश सुन्दर सस्य सौं सम्पन्न।
समय सिर पर होय बरखा बहुत संचित अन्न॥
दयायुत नर सकल सुन्दर स्वच्छ सब बेबहार।
सकल विद्या उदधि मिथिला विदित भरि संसार॥[3]

इन दोनों प्रकार के देशों में प्राकृतिक के साथ-साथ कृत्रिम जलाशय जगह-जगह पर मिलते हैं। कृत्रिम अर्थात् मनुष्य के द्वारा निर्मित जलाशयों के मुख्यतः आठ भेद होते हैं-

सद्भिर्जलाशयः कार्यो यत्नाद् याम्योत्तरात्मकः।
कूप-वापी-पुष्करिण्यो दीर्घिका द्रोण एवं च।
तडागः सरसी चैव सागरश्चाष्टमः स्मृतः॥[4]

जल के आशय=आधार हुआ- जलाशय, उसे यत्नपूर्वक बनाना चाहिए; और वह दक्षिण से उत्तर की ओर लम्बा हो। अर्थात् पूरब से पश्चिम अधिक विस्तार नहीं हो। इसलिए गोलाकार कूप और समचतुष्क (लम्बाई-चौड़ाई बराबर) पुष्करिणी (छोटा तालाब) को छोड़कर सभी जलाशय आयताकार होते हैं, जिसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण अधिक होती है।

1. अमरकोष, 1.10.3
2. वाचस्पत्यम् (शब्दकोष), देवमातृक शब्द
3. चन्दा झा, मिथिलाभाषा रामायण, बालकाण्ड, अध्याय-6
4. वायुपुराण, जलाशय प्रकरण

* कुलपति, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा।

जलाशय अपने परिसर अथवा घर से पूर्व-दक्षिण, पश्चिम-दक्षिण और पश्चिम-उत्तर कोण में उत्तम नहीं होते हैं-

वापीं कूपं तड़ागं वा प्रासादं वा निकेतनम्।
न कुर्याद् वृद्धिकामस्तु अनलानिलनैर्ऋतैः॥[5]

शास्त्रानुसार धनवान् के चाहिए कि इष्ट और पूर्त इन दोनों प्रकार के धर्म का पालन निष्ठा एवं उदारता से करें जिससे अपने साथ-साथ लोगों का भी उपकार होता है। इष्ट हुआ धर्म- अग्निहोत्र (हवन), तपस्या, सत्यव्रत, वेद का अध्ययन और तदनुसार आचरण, अतिथि-सत्कार, और बलिवैश्वदेव (नैवेद्य का उत्सर्ग)। पूर्त हुआ लोकपालन सम्बन्धी कार्य- कूप, वापी, तड़ाग, देवमन्दिर, मार्ग, अन्नदान, बगीचा, पुष्पवाटिका आदि का निर्माण। इन सभी कार्यों में महान् धर्म और उन्नति होती है।[6]

कूप

सबसे छोटा जलाशय कूप गोलाकार होता है, जिसका व्यास न्यूनतम ढ़ाई हाथ और अधिकतम छह हाथ होता है। यह सामान्यतः 60 हाथ गहरा अथवा जितना नीचे स्वच्छ जल मिले- ऐसा होना चाहिए। यह कच्चा (विना ईंट का) तथा पक्का जगत (लहरा- मैथिली) सहित दो प्रकार के होते हैं। विस्तार के भेद से भी ये दो प्रकार के होते हैं- छोटा कुइयाँ और कुआँ (इन्नार- मैथिली)। शास्त्र में उल्लेख है-

भूमौ खातोऽल्पविस्तारो गम्भीरो मण्डलाकृतिः।
बद्धोऽबद्धः स कूपः स्यात् तदम्भः कौपमुच्यते।[7]

अर्थात् थोड़ा विस्तार वाला गहरा गोलाकार गर्त कूप है, जो ईंट से बँधा अथवा विना बँधा भी होता है। इसके जल को 'कौप' कहते हैं जो पीने के लायक होता है। बाल्टी-रस्सी से खींचकर पानी ऊपर किया जाता है। जल निकालने के लिए तेकठी यन्त्र (ढेकुल- मैथिली) लगाया जाता है, अर्थात् तीन ओर से तीन अथवा चार बाँस को खड़ाकर अथवा लकड़ी का मजबूत खम्बा गाड़कर ऊपर में एक जगह मिलाकर रस्सी से बाँधकर गोल चक्की के आकार की मोटी लकड़ी उसपर देकर एक बड़ा और मोटा बाँस चौड़ा कर उसपर रखकर बाँस के शीर्ष पर रस्सी बाँधकर नीचे बाल्टी लटकाकर बाँस की जड़ वाले भाग पर ईंट, मिट्टी आदि का भार बाँधकर आसानी से पानी भरा जा सकता है। यह जल जाड़े के मौसम में गर्म तथा गर्मी में शीतल होता है। कहीं कहीं कुआँ के पास बड़ा-सा गढ़ा खोद दिया जाता है, जिसमें पशु-पक्षी जल पीते हैं, इसे संस्कृत में 'निपान' अथवा 'आहर्य'[8] कहा जाता है और मैथिली में 'आहर' कहते हैं।

सूखी नदी अथवा नदी के सुदूर बालू पर चार-पाँच हाथ नीचे में जल मिलता है, वहाँ छोटा, कच्चा कुआँ खोदा जा सकता है। इसे संस्कृत में 'कूपक' कहा जाता है। कूप को मुंडा (विना जगत का) भी रखा जाता था, जिसमें मनुष्य अथवा पशुओं के गिरने का डर रहता था। पक्के कूप के घेरे को दो हाथ ऊँचा कर दिया जाता है, जिससे गिरने का भय नहीं रहता है। इस घेरे को 'जगत' अथवा 'लहरा' कहते हैं। कुआँ के नीचे चारों और मूँठ बाँधे हाथ के बराबर जौमठि (जामुन की लकड़ी का आधार) दिया जाता है, जिसपर गोलाकार दीवाल खड़ी की जाती है। दीवाल में दो हाथ पर मोटे-मोटे लोहे के कड़े चढ़ने-उतरने के लिए डाल दिये जाते हैं। जौमठि कसैला स्वाद का रहने से वह पानी को शुद्ध करता

छायाचित्र साभार : श्री मुरारी कुमार झा

ढेकुल के सहारे कुएँ से जल खींचता हुआ एक बालक

5. देवीपुराणम् 6. जतूकण्यस्मृति 7. आदित्यपुराण

है, लेकिन इस जल में पकाया हुआ चावल लाल (जामुन के रंग का) और दाल विना सीझा हुआ रह जाता है। समय-समय पर इसकी सफाई और चूने से शुद्धीकरण किया जाता है। कूप से पानी निकालकर घड़ा में डालकर घड़े को माथे पर अथवा कमर पर रखकर घर लाकर घैलची (घड़ा रखने की ऊँची जगह) पर ढँककर रखा जाता था।

जल भंडारण की जगह- **घैलची**

वापी

इसे 'वाउली' कहा जाता है, जो अब मिथिला में नहीं, पश्चिम के प्रान्तों में काशी आदि में देखा जाता है। यह आयताकार होता है, जिसके पूरब, पश्चिम और उत्तर दिशा में सीधा दीवाल रहता है, केवल दक्षिण दिशा से उतरने के लिए चौड़ी सीढ़ियाँ रहती है। कूप में ऊपर से ही पानी भरना पड़ता है, लेकिन वापी में सीढ़ी से नीचे उतरकर जल लिया जा सकता है।

कूपः अद्वारको गर्तः वापी तु बद्धसोपानका।[9]

पल्वल

छोटा तालाब, जिसे मैथिली में 'चभच्चा' या 'डाबर' कहा जाता है। वासभूमि यानी डीह को भऱने के लिए घर के आगे, पीछे, उत्तर या दक्षिण डाबर खुदबाया जाता था, जिसमें मछली पाली जाती थी।

तालाब

पुष्करिणी में जल रहने की जगह (पनिझाओ- मैथिली) 20 हाथ ×20 हाथ चौकोर होता है। इसके अतिरिक्त चारों ओर दस हाथ का आँगन और उससे बाहर भिंडा (महार- मैथिली) होता है। इसमें घाट बना दिया जाये तो उत्तम, नहीं तो लड़की अथवा पत्थर के 'दारु' पर कपड़ा आदि की सफाई की जाती है। स्नान, वस्त्र-बर्तन आदि धोना, पशुओं के जल पीने के लिए तथा सिंचाई के लिए इसका उपयोग होता है। लोगों के पीने के लिए कुआँ, वाउली, नदी और झरने के जल का उपयोग होता है।

चार हाथ का एक धनुष अथवा धन्वन्तर होता है। एक सौ धन्वन्तर की पुष्करिणी होती है। इसके पाँच गुणा बड़ा तड़ाग (बड़ा तालाब)[10] होता है। तदनुसार 20×20 हाथ=400 वर्ग हाथ ÷4 =100 धनुष पुष्करिणी, 300 धनुष दीर्घिका (लम्बाई अधिक तथा चौड़ाई कम), 400 धनुष द्रोण, 500 धनुष तड़ाग=50×40 हाथ=2000 वर्ग हाथ÷4 =500 धनुष। यह नाप केवल पानी रहने की जगह का है, आङन और भिंडा इससे अतिरिक्त हुए।[11] इससे बड़े तालाब को सागर कहते हैं, जैसे दरभंगा में – गंगासागर, लक्ष्मीसागर, मधुबनी में- गंगासागर, सरिसब में रतनसागर, अदलपुर में –सुन्दर सागर, बेहट में सुनरसाइर, रतनसाअर आदि।

यद्यपि दिर्घिका (दिग्घी) 300 धनुष का होता है तथापि मत्स्यपुराण के अनुसार अतिबृहत् जलाशय जिसकी लंबाई उसकी चौड़ाई से दूनी-तिगुनी हो उसे दिग्घी कहेंगे, जैसे दरभंगा में चन्द्रधारी संग्रहालय के पास दिग्घी, संस्कृत विश्वविद्यालय के पीछे सुखी दिग्घी आदि।

इनके अतिरिक्त राजभवन के चारों ओर खोदी गयी परिखा (मै.- गढ़खई), घर के समीप का खत्ता, डबरा, डबरी, कियारी, आदि भी जल के आश्रय हैं। खत्ता खुदाने में भी पुण्य कहा गया है। धर्म के नाम पर कितने लोगों का कल्याण होता था यह इस विवरण से जाना जा सकता है।

8. अमरकोष, वारिवर्ग, मुकुन्द झा बक्शी कृत मैथिली व्याख्या, सम्पादक डॉ.शशिनाथ झा
9. वाचस्पति मिश्र, द्वैतनिर्णय
10. आदित्य-पुराण
11. वसिष्ठ-संहिता

यो वापीमथवा कूपं देशे तोयविवर्जिते।
खानयेत् स दिवं याति बिन्दौ बिन्दौ शतं समाः॥[12]

जो व्यक्ति निर्जल प्रदेश में जलाशय खुदबाते हैं वे उनकी एक-एक बूंद जल के सौ वर्ष तक स्वर्ग में वास करते हैं। यही फल इनके जीर्णोद्धार में कहे गये हैं।[13]

दस कुआँ खुदबाने का फल एक वापी खुदबाने में, दस वापी का फल एक ह्रद (दह या महातड़ाग) बनबाने में, दस दह के तुल्य एक पुत्र उत्पन्न करने में तथा दस पुत्र के तुल्य एक वृक्ष के रोपने से फल मिलता है-

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमो पुत्रो दशपुत्रसमस्तरुः॥[14]

इन सभी कृत्रिम जलाशयों का उत्सर्ग (सार्वजनिक उपयोग हेतु विधिवत् त्याग) आवश्यक कहे गये हैं। इनके लिए जलाशय-संस्कार (यज्ञ के द्वारा) आवश्यक है।

सदाजलं पवित्रं स्यादपवित्रमसंस्कृतम्।
कुशाग्रेणापि राजेन्द्र न स्पृष्टव्यमसंस्कृतम्॥[15]

पूजन-हवन-पञ्चगव्यादि प्रक्षेप से जलाशय का संस्कार विधानपूर्वक करने के बाद सकल जन्तु के लिए उसे उन्मुक्त छोड़ दिया जाये। इससे जल में दिव्य तत्त्व का वास हो जाता है और सभी लोग बेरोक-टोक व्यवहार कर सकेंगे।[16] 'कूपयागविधि' एव म.म. रघुपति कृत 'तडागयागपद्धति' 'वर्षकृत्य' के द्वितीय भाग में उपलब्ध है।[17]

तालाब के यज्ञ में 'जाठि' (<यष्टि- संस्कृत) गाड़ा जाता है, बीचो-बीच में। यह 18 से 24 हाथ तक का होता है, जो तालाब के भिंडा से अधिक ऊँचा न हो। बिना याग का तालाब 'कुँवारी' रहता है और याग के बाद 'शादीशुदा' माना जाता है।

नदी

प्राकृतिक जलाशय में गर्त, नदी, नद, ह्रद, सरसी, सरोवर, झील और समुद्र आते हैं। आठ हजार धनुष से कम दूरी तक बहनेवाली धारा को गर्त कहते हैं, नदी नहीं। इससे अधिक दूर तक प्रवाह वाली नदी कहलाती है।

धनुःसहस्राण्यष्टौ च गतिर्यासां न विद्यते।
न ता नदीशब्दवाच्या गर्तास्ते परिकीर्तिताः॥[18]

तदनुसार 32 हजार हाथ से अधिक लम्बाई में नदी का होना आवश्यक है। एक हजार धनुष का एक कोस होता है। तदनुसार आठ कोस से लम्बी को नदी कहेंगे– कमला, कोशी, वाग्मती, गण्डकी ये सब नदियाँ हैं। ऐसे जलप्रवाह क नाम यदि पुंलिंग हों तो ये नद कहलायेंगे- ब्रह्मपुत्र, सोन, सिन्धु, दामोदर। समुद्र में मिलनेवाला ब्रह्मपुत्र और सिन्धु महानद और गंगा, गोदावरी आदि महानदी कहलाती हैं। नदी के प्रवाह में या किनारे में दलदल भरा हुआ महागर्त मोनि (ह्रद) कहलाता है, जिसे मैथिली में दह कहते है- कालीदह, नागदह, हथिहद आदि।

प्राकृतिक तालाब जो अनादि काल से देवमन्दिर के समीप हैं देवखात कहलाते हैं- जैसे कपिलेश्वर का तालाब।

नदी की बाढ़ में फैला हुआ पानी नदी के द्वारा बनाये गये गर्त में यदि रहे जाये और नदी से उसका सम्पर्क टूट जाये तो वह नदी के समान पवित्र नहीं माना जाता है, लेकिन वह स्नान करने के योग्य होता है, लेकिन गंगा नदी का ऐसा गर्त अपवित्र हो जाता है, उसमें स्नान भी नहीं करना चाहिए। मृत नदी (मरन धार) में बरसात में पानी भर जाता है और फाल्गुन तक आते

12. विष्णुधर्मोत्तर पुराण 13. नन्दि-पुराण 14. उपवनविनोद, सम्पादक डॉ.कृष्णानन्द झा
15. नन्दिपुराण 16. मत्स्यपुराण में जलाशयसम्बन्धी सभी बातें विस्तार से वर्णित हैं।
17. वर्षकृत्य द्वितीय भाग, पं. रामचन्द्र झा 18. रघुनंदनभट्टाचार्यः, तिथितत्त्वम्

करीन से सिंचाई करता हुआ किसान

सिंचाई के लिए प्रयुक्त रहट

आते सूख जाता है उसे 'नदीखेत' अथवा 'डोंरा' कहा जाता है। उथला झील, जिसमें धान उपजता हो और फाल्गुन तक खेत सूख जाये, उसे 'चौर-चाँचर' कहते हैं।

इन सभी जल स्रोतों से सिंचाई, मत्स्यपालन, मखाना उत्पादन, कमल फूल की खेती, भेंट के बीज (चावल) की खेती, करहड़, सारुक आदि कन्दों की उपलब्धि होती है, जो भोजन के काम में आते थे। इनमें क्रौंच (सारस), बगुला, हंस, सारस, चकबा, सिल्ली, कुररी, शरारि, नकटा, दिघोंच, आदि जलचर पक्षी निवास करते हैं। सीप, डोका, कछुआ आदि जलजीव रहते हैं।

सिंचाई के साधन-

एक खेत से दूसरी खेत में थाली से उपछा जाता है। कूप से रहट के द्वारा, तालाब आदि से लकड़ी के करीन, हुचुक, ढोइस (कनस्तर=टीन या कंटर को रस्सी में बाँधकर दो आदमी से खींचकर) के द्वारा सिंचाई नाली बनाकर की जाती है।

इस प्रकार गाँव-गाँव में जल-संसाधन से सम्पन्न मिथिला वर्तमान समय में केवल यन्त्रधीनता की ओर तेजी से आगे बढ़ रही है जो अच्छा लक्षण नहीं है। अपने प्राचीन वैज्ञानिक जल संसाधनों की रक्षा आवश्यक एवं उपयोगी है।

***

अग्रिम अंक जगन्नाथ-विशेषांक का विशेष आकर्षण

चतुर्भुज दास कृत जगज्जीवनचरितम्

दादू-पन्थ के सन्त जगजीवन दास का यह चरित संस्कृत भाषा में सन्त चतुर्भुज दास ने 'जगज्जीवनचरितम्' के नाम से लिखी है। अभी यह पाण्डुलिपि के रूप ही उपलब्ध है। इसमें अनुष्टुप् छन्द के कुल 78 श्लोक हैं। इसका सम्पादन पं. भवनाथ झा के द्वारा किया जा चुका है। आषाढ, 2078 के अंक में इसका प्रकाशन होगा।

भारत की हर भाषा में जल ज्ञान

(राजस्थान के सन्दर्भ में विशेष)

डॉ. श्रीकृष्ण 'जुगनू'*

वैज्ञानिकों ने जल को H_2o नाम दे दिया दिया तो उन्हें लगा कि जल पर हमें छोड़ किसी ने नहीं लिखा है। हमारे भारतीय भी पूरी 19वीं शती में यही सिद्ध करने में लगे रहे है कि संस्कृत में धार्मिक और काव्य-साहित्य छोड़कर कुछ है ही नहीं। सच्चाई यह है कि भारत की सभी भाषाओं में जल-विमर्श हुआ है। संस्कृत की व्यापकता के कारण तो सर्वाधिक विमर्श संस्कृत भाषा में है। लेखक ने अपने लेख में जल-विषयक ग्रन्थों की प्राचीन भण्डारों में खोजबीन और उपलब्धता की बात कही है। यह प्रसन्नता का विषय है कि जिन ग्रन्थों की इसमें सूचनाएँ और संकेत हैं, वे सभी लेखक ने स्वयं ही सम्पादित और अनूदित किए हैं। इस सदी में जलशास्त्र पर उनका अपूर्व कार्य है।

जल बहुत सहज उपलब्ध है लेकिन यह जीवनोपयोगी द्रव्य के रूप में महिमामय रहा है। जीवन निर्माता और संहारकर्ता भी है। इस अर्थ में यह तत्त्व है जिसके स्रोत, संगठन, गुणों पर चर्चा करें तो वैदिक मन्त्र, ऋचा या श्लोक याद आते हैं, जो प्रारंभिक और परिभाषिक विमर्श में सहारा बनते हैं। जल की साहित्यिक यात्रा और उसके सिंहावलोकन का कार्य मैंने 1999 के आसपास शुरू किया और शीघ्र ही यह ज्ञात हो गया कि भारतीय वाङ्मय में जल के पूरे 100 पर्याय हैं, लेकिन विकल्प एक भी नहीं है। जल-दिवस के आरंभिक आयोजनों के दौरान जब मैंने भाषण, वार्ता, लेख आदि तैयार किया तो लगा कि देश की प्रत्येक प्राचीन भाषा में पानी के बारे में लिखा गया है। पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, तमिल, तेलगु, कश्मीरी डोगरी, बंगला, ओडिया से लेकर राजस्थानी तक जल का गुणगान अनेक रूपों में हुआ है।

संस्कृत चूँकि भारत और उसके उप महाद्वीपीय देशों के बीच सम्पर्क भाषा रही, ऐसे में सबसे अधिक सन्दर्भ और ग्रन्थों के संस्कृत में ही मिलने की सम्भावना लगी। मैंने इसी उद्देश्य से कोलकाता, पूना, बड़ौदा, कराड़, मुंबई, उज्जैन, जोधपुर, बीकानेर, अलवर, उदयपुर के ग्रन्थ-भण्डारों के द्वार खटखटाए। आश्चर्य हुआ कि पानी के अनेक पक्षों पर विद्वानों ने विचार किया है। राजस्थान में 'भड़ली-पुराण', 'मेघ-प्रबोध', 'मेघमाला', 'कादम्बिनी' आदि की रचना होने के मूल में मेघों से जीवन की याचना का सनातन भाव निहित है। गुजरात में डंक-भडली संवाद राजस्थान की मनोभूमि को ही लिए है, लेकिन यह घाघ-भड़ली कहावतों का संस्कृत रूप रहा। घाघ वचन हमें उड़ीसा, उत्तर प्रदेश तक मिलते हैं और बंगला बिहार में खनार वचन तथा महाराष्ट्र में सहदेव भाड़ली के रूप में सामने आते हैं। मिथिला में डाक-वचन के रूप में समान चर्चा की गयी है। ये सबके सब पराशर के मत में मान्य थे, जिन्होंने कृषकों की सबसे पहले चिन्ता की और मेघशास्त्र को सर्व सामान्य के लिए प्रकाशित किया।

राजस्थान और हरियाणा की धरती से विश्वास होता है कि विनशन पर लुप्त हुई सरस्वती नदी के तटवर्ती उपासक धर्मियों ने सरस्वती के प्रवाह क्षेत्र की पहचान को नहीं मिटने दिया। सारस्वतों ने जल के इस अर्गल (कुंजिका) को उदकार्गल शास्त्र में निबद्ध किया जिसको मनु, शास्वत, बलदेव ने अपने-अपने तरीके से लिखा और

*लगभग 175 ग्रन्थों के अनुवादक एवं सम्पादक, विश्वाधारम, 40 राजश्री कॉलोनी, विनायकनगर, उदयपुर- 313001, राजस्थान, दूरभाष संपर्क : 099280-72766, मेल : skjugnu@gmail.com

लोकप्रिय किया और 587 ई. में वराहमिहिर, 1118 ई. में भोजराज, 1129 ई. में सोमेश्वर, 1296 ई. में शारंगधर और 1577 ई. में चक्रपाणि मिश्र ने 'दकार्गल' नाम से लिखा या स्मरण किया। 'बृहत्संहिता' की विवृत्ति हो या 'शारदा-तिलक' की टीका, उनमें इस विषय को विस्तार मिला। गुजरात के 'मुहूर्त-दीपक' के कर्ता महादेव बाड़व ने तो इस पर अलग से छंद रच दिए।

इस प्रकार मेघशास्त्र का विस्तार गर्ग और नारद के 'मयूरचित्रकम्' में हुआ। गर्ग के नाम से प्रसिद्ध 'गार्गी-संहिता', 'गुरुसंहिता' में संवत्सर फल से ज्यादा ऋतु, मौसम और मेघ वर्षण, स्वाति वर्षण, आषाढ़ी योग, सद्योवृष्टि लक्षण मिलते हैं। वराह को ये सब विषय इतने प्रिय थे कि अपनी दोनों संहिताओं में सम्मान दिया।

जल के गुण धर्म की चर्चा प्रमुखता से सुश्रुत ने की और अनेक स्रोतों से मिलनेवाले जल का पहला वैज्ञानिक विभाजन किया। इसीको पुन: चरक ने संगठित किया और आगे 'अष्टांग-संग्रह' तथा 'अष्टांग-हृदय' में विश्लेषित किया गया। इनमें गांग जल और करकजल की सुन्दर परिभाषाएँ भी हैं। यह सब इतना उपयोगी विषय है कि प्रत्येक भारतीय को याद हो। यह संस्कृत भाषा के महत्त्व को पुष्ट ही नहीं करता, उसको उपयोगी भी बनाता है।

दर्शन में पञ्चतत्त्वों पर विचार के क्रम में जल की तन्मात्राओं पर चिन्तन किया गया और 'प्रमाणमंजरी', 'पञ्चदशी' आदि में बहुत जटिलता से जल तत्त्व को समझाया गया। राजा भोज ने पहली बार जल को उन चार तत्त्वों में माना जिसका मशीन (यन्त्र) हेतु उपयोग किया जा सकता था। भोज ने 'समरांगण-सूत्रधार' में जल के सूक्ष्म संगठन और उसकी ऊर्जा क्षमता पर जो विचार दिया, वह संस्कृत में मेरे अवगाहन में विशेष हेतु बना और उस ग्रन्थ के अनुवाद का मार्ग प्रशस्त हुआ। यन्त्राध्याय में नल, जल, सिंचाई, द्रोणी, विमान यन्त्र आदि पर आश्चर्यजनक तथ्य मिलते हैं।

जलालय और जल-स्थापत्य के ग्रन्थ

गुजरात में सोलंकी युग का उत्कर्ष काल भारत की आत्मिक कला में एक योधेय युग के रूप में भी जाना जाता है। मेरा मानना है कि अन्तर बाह्य व्यापार की वृद्धि, धर्म नीति और शिल्प में नवीन प्रवृत्तियों का संचार और लोकरुचि का आकर्षण - ये वे विशेषताएँ हैं जिन्होंने सोलंकी युग की स्मृतियों को आज तक पवित्र बनाए रखा है। सोलंकियों ने तलवार को अपनी तरह से थामा और मूठ अपने पास रखकर फलक की चलक छलकती रही मेवाड़, मालवा और कोंकण तक। बरसों बाद भी सिद्धराज, कुमारपाल के किस्से स्मृतियों के हिस्से बने हैं। सूत तक भूल बैठे कि यह युग पौराणिक नहीं था, 'स्कन्दपुराण' ने सोलंकी काल को सजाया, तो 'सरस्वती-पुराण' तो इस युग का दस्तावेज हो गया।

जल स्थापत्य इस काल की एक उत्तम विशेषता है। यह अकाल के सीने पर सोलंकी युग के छैनी हथौड़ी वाले दस्तखत है। कूप, कुईं, कूटो वाली वापियाँ और सरोवर के साथ द्रोणियाँ- सबमें कुछ अनोखापन मिलता है। सांची वगैरह में जो तोरण अस्थि निखात, स्तूपों पर बनाए जाते थे, उस परम्परा को सोलंकियों ने सजीव, जनोपयोगी वास्तु से संबद्ध की। देव, जल और जन स्थापत्य को तोरणदार किया। भारतीय कला में तोरण कीर्ति की कलंगी और यश की छाप छवि के रूप में जाने जाते है। सोलंकी काल ने इसे ऊँचाई दी।

'अपराजितपृच्छा', 'दीपार्णव', 'क्षीरार्णव'-जैसे ग्रन्थ इस काल के शिल्प प्रयोगों, भारतीय सिविल इंजीनियरिंग में प्रचलन में आए शब्दों को समेटे हुए हैं और इनकी परम्परा सैद्धान्तिक से अधिक प्रायोगिक रही। जब इन ग्रन्थों पर मैंने काम किया, तब रह रहकर हर प्रयोग को देखने की इच्छा रहती थी, सोशल मीडिया ने इसे सुगम कर दिया। ये ही वे ग्रन्थ हैं, जिनके धारक और नियामक विप्रों ने यज्ञोपवीत को बदन पर धारण किया, तो हाथ में वास्तु के लिए सूत्र को साधे रखा। वे सूत्रधार कहे गए...। (इन पंक्तियों के लेखक द्वारा संपादित : अपराजितपृच्छा की भूमिका)

सोलंकियों ने व्यापार के केंद्र, जन जुड़ाव के स्थलों और मार्गों समेत अपने विजित क्षेत्रों में देवालय और जलालय के निर्माण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी। उनकी सेना के साथ शिल्पियों का बड़ा समूह होता। रक्तपात के साथ ही जन सन्तोष के

लिए जनोपयोगी निर्माण कार्य आरम्भ कर दिए जाते थे। आहत को राहत के इस सिलसिले ने सोलंकियों को संवेदनशील शासक सिद्ध किया।

चौहानों की चांद वापी : आभानेरी

मरुधन्व प्रदेश में जलस्रोत के प्रति लगाव का ललित प्रादर्श है आभानेरी की वापिका। आठवीं सदी, चौहानों की सत्ता का अभ्युदय काल और उस धारणा का विकास, जिसमें प्रपा-पुण्य या वापी-माहात्म्य को प्रसारित किया जा रहा था। राजमार्ग पर वृक्ष-रोपण व विश्राम गृहों की अपेक्षा स्थायी महत्त्व के जल-स्रोतों को प्राथमिकता दी जाने लगी थी, विशेषकर गुजरात से मरुभूमि व कुरुभूमि होते हुए दोआब प्रदेश तक में वापियों, बावों, बावड़ियों या बावलियों की रचना हुई। हर वापी शिल्प परस्पर भिन्नता लिए रहा लेकिन जल सतह तक पहुँचने वाली सीढ़ियों के द्वार दिशा के आधार पर नन्दा, भद्रादि तिथियों पर वापी का नामकरण हुआ और इनके लिए शिल्पियों ने दिन-रात एक किया तो गणितज्ञों ने गणना करते-करते चैन न लिया। आय-गणित के रोचक प्रयोग रहे। चांद वापी विश्वभर में ऐसी निर्मिति मानी गई है जिसका न जोड़ है न तोड़। बिल्कुल बेजोड़। 64 फीट गहराई, 13 मंजिल और 3500 सीढ़ियों का विन्यास! कैसे किया गया इस गणित को? तब कौन-सा शास्त्र शिल्पीगणों का आधार और स्रोत रहा?

रानी की वाव : रानी उदयमती द्वारा निर्मित (1050ई.)

पद्मकुण्ड और उसका स्थापत्य विधान :

जलस्रोतों में 'कुण्ड' एक विशेष प्रकार की रचना है, तो उसमें भी एक निर्माण शैली है- पद्मकुण्ड की। इसे कमल कुण्ड भी कहा जाता है। इसे 'कमलखेत' के रूप में भी जाना जाता है, क्योंकि यह पद्म उत्पन्न करता है।

पुष्करिणी, दीर्घिका, पोखरी, पोखरणी वगैरह भी इसके पर्याय हैं। हालांकि 'अपराजितपृच्छा', 'राजवल्लभ' आदि शिल्प-ग्रन्थों में अनेक प्रकार के कुण्डों का नामवार विवरण मिल जाता है और पुराणों में 'मत्स्य' और 'साम्बपुराण' में इनका सुन्दर विवरण है। इससे यह तो लगता ही है -

1. ये कुण्ड कृत्रिम बनाए जाते थे,
2. कुण्डों की रचना पाषाणों से होती है,
3. पुष्पादि रूप में उनका संयोजन होता
4. कोणादि रूपों को भी दिखाया जाता।

भारतीय परम्परा में स्नान और देवालयों में स्नात आदि विधानों के लिए बड़े-बड़े कुण्ड उत्तर से लेकर दक्षिण तक बनाए गए हैं। कई नाम, कई रूप और उनके निर्माण की भी अपनी अपनी कहानियाँ और इतिहास है।

श्रीलंका तक कुण्डों का वैभव देखा जा सकता है। वहाँ राजधानी के पास ही पोलेण्णरुव्वा के जेतवनराम परिसर में एक सुंदर कुण्ड है : पद्मपोखरी (Lotus pond) यह करीब आठ सौ साल पुराना है। राजा पराक्रमबाहू (1153-86 ई.) के शासनकाल में इसका निर्माण हुआ। इसके प्रारम्भिक अवशेष जेतवन की खुदाई में मिले।

इसकी रचना पद्म के आकार की है और नज़र ऐसे आता है जैसे भूमिस्थ कमलाकार मंच हो, जबकि यह बहुत पवित्र जलस्रोत रहा है। 'महावंश' के उद्योग-निर्देश के मुताबिक इसका निर्माण हुआ। यह जानकर रोचक लगेगा यह पद्मकुण्ड अष्टकोण की रचना से बना हुआ है। भूमितल से नीचे तक पाँच प्रस्तर की तहें हैं और पुष्प के रूप में कुछ इस तरह गड़े हुए

पत्थरों का संयोजन किया गया है वे मुकुलित पंखड़ियों से लेकर आंतरिक रूप तक को दिखाई दे। इसकी रचना का नियम है: 360 ÷ 8 = 45°. इस तरह पाँचों स्तर के पाषाणों को 45-45 डिग्री में सुघड़ बनाकर ऊपर से नीचे तक न्यून करते हुए संयोजित किया गया है। इससे यह वृत्ताकार भी है और उसमें पंखुडी-पंखुड़ी पद्म प्रदर्शित करती है। दरअसल ये सीढ़ियाँ भी सिद्ध होती है। अंदर ही मोखी रूप में जलभरण और निकास रूप में जल निकालने का उपाय भी प्राचीन स्नानागार की तरह दिखाई देता है।
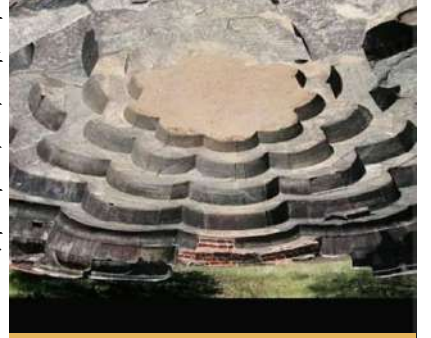
पद्मकुण्ड श्रीलंका में बना हुआ जलस्रोत

ओद् यन्त्र : जलीय इंजन

पानी उठाने, ले जाने जैसे कामों से जुड़े यन्त्र कब चलन में आए, मालूम नहीं, लेकिन वैदिक समन्दर्भों से आशा रखनेवालों ने जल की वैद्युतिक रचना का प्रमाण जरूर खोजा है :

संघातयति परमाण्वादीन् तद् ब्रह्मजलम्।

जड़ अर्थ में यहाँ कहा गया है कि अव्यक्त परमाणुओं का जो संयोग-वियोग करवाता है, वह जल कहा जाता है। जल के साथ यन्त्रों का साक्ष्य सिंचाई के प्रयोजन से अर्थशास्त्र में मिलता है। दूसरे अधिकरण में चार तरह के कृत्रिम साधनों का वर्णन है :-

1. हाथ द्वारा सिंचाई
2. कंधे पर लादकर ले जाए गए पानी से,
3. नलों व नालियों से और
4. नदी, कूप आदि स्रोतों से लाकर या उठाकर।

ओद् यन्त्र का अंकन, स्थान : गुजरात, सोलंकी

इनमें नलों द्वारा सिंचाई के लिए **"स्रोतोयन्त्रप्रावर्तिम्"** कहा गया है और चौथे स्रोत **"चतुर्थं नदीसरसितटाक कूपोद्घाटनम्"** की टीका में त. गणपति शास्त्री ने कहा है : **"उद्घाट्यते निस्सार्यते जलमनेनेत् उद्घाटोऽरघट्टकादि यन्त्रलक्षणया...।"** (पृष्ठ 287)

लेकिन, यह टीका पिछली सदी की है और चाणक्य के काल के जल-यन्त्रों की पुष्टि नहीं करती। यन्त्रों के स्वरूप पर कुछ और विचार के लिए मनुस्मृति के साक्ष्य देखें, तो वहाँ 'प्रस्रवाणानि' और 'सततमुदकागम' जैसे शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। ये यन्त्र न होकर सिंचाई के काम आने वाली नहरें और नदियाँ हो सकती हैं।

यन्त्रों और यन्त्रों से जुड़े लोगों का कदाचित् पहला साक्ष्य महाराष्ट्र से मिलता है। यह नासिक बौद्ध गुहाभिलेख है और आभीर शासक माढ़री पुत्र ईश्वरसेन के समय का है। यानी क्षत्रपकालीन वर्ष 9 का जिसके अक्षर सातवाहनों के परवर्ती लगते हैं। ल्यूडर्स की अभिलेखीय सूची में आए इस साक्ष्य में "ओद् यन्त्रक" का उल्लेख है और उसकी पहचान जलीय इंजन बनानेवाले मजदूर या कारीगर से की जाती है। हालाँकि इन लोगों की श्रेणी की पहचान पर एक राय नहीं है। इसकी नवीं दसवीं पंक्ति में लिखा है : **"हस्ते कार्षापणसहस्त्रं 1000 ओद्यन्त्रिकसहस्त्राणि द्वे 2..."**

अब कैसे तय हो कि ये जल के इंजन कैसे होते थे? हम यह भी तो नहीं जानते हैं कि ये इंजन जल भरने के काम आते थे या पानी चढ़ाने, तोड़ने या फिर पानी में तैरने? लेकिन यह जरूर है कि पानी के लिए ये इंजन थे और 'ओद् यन्त्रक' सक्रिय थे; तथापि इसके समकालीन 'देवीपुराण' में द्वारीबन्ध के जिस निर्माण, स्वरूप, रचना, उपयोग आदि की जानकारियाँ हैं, उसमें ऐसा कोई विवरण नहीं है, उसने जरूरी भी नहीं समझा हो।

जल संरक्षण की वस्तु है। जल से ही कल है। यह प्रकृति का अनुपम उपहार है और भविष्य भूषण भी है। मैंने सस्य-वेद, काश्यपीय कृषि-पद्धति, कृषि-पुराण, डंक-भडली-संवाद, वृक्षायुर्वेद, विश्ववल्लभ, कृषि-कामधेनु, बार्हस्पत्य कृषिशास्त्र ही नहीं, अपराजित-पृच्छा, राजवल्लभ-वास्तुशास्त्र, शिल्प-रत्नम्, मानसोल्लास आदि में जल के जितने पक्षों पर विचार किया है, वह भारतीय जलशास्त्र के आनुषांगिक विषय हैं। इसी पर जल और भारतीय संस्कृति कृति का प्रणयन किया गया।

वराहमिहिर का भूमिगत जल परीक्षण

यह विषय देश के लगभग हर क्षेत्र में लिखा गया है। गुजरात और महाराष्ट्र में निकली दो अनूदित पुस्तकों की भूमिका में मैंने माना कि यह ऐसा ज्ञान है जो सर्वसामान्य को होना चाहिए।

वराहमिहिर ने 'बृहत्संहिता' में एक उदकार्गल नामक अध्याय में 125 श्लोकों में भूगर्भस्थ जल की विभिन्न स्थितियाँ और उनके ज्ञान सम्बन्धी संक्षेप में विवरण प्रस्तुत किया है। विभिन्न वृक्षों-वनस्पतियों, मिट्टी के रंग, पत्थर, क्षेत्र, देश आदि के अनुसार भूगर्भस्थ जल की उपलब्धि का इसमें पूर्वानुमान दिया गया है। बताया गया कि किस स्थिति में कितनी गहराई पर जल हो सकता है। फिर अपेय जल को शुद्ध कर कैसे पेय बनाया जाय, यह संकेत दिया गया है। इस विवरण के ज्ञान से भूगर्भस्थ जल को पाने का प्रयास किया जा सकता है। वराहमिहिर ने अपने समय में प्रचलित लोकविश्वासों और अनुभवों की परख का सार लिखकर भावी जनता के लिए मार्गदर्शन किया है, लेकिन वह अपने से पूर्व इस शास्त्र की परम्परा भी लिखकर आभार मानता है। वह मानता है कि भूगर्भस्थ जल का लोग परीक्षण कर सकें और तदनुसार कुएँ खोदकर जल प्राप्त करने का प्रयास कर सकें। उससे प्राणियों तथा फसलों के लिए पानी उपलब्ध करा सकें। ऐसे ही विभिन्न आधारों पर लोकानुभव के सार की समझ का ही परिणाम है कि प्राचीन काल के जो कुएँ बावड़ी आज उपलब्ध हैं, उनमें अटूट जल पाया जाता है।

परन्तु, आज हम उनकी उपयोगिता की उपेक्षा करके पानी-पानी के लिए मोहताज होते जा रहे हैं। उधर पर्याप्त वर्षा के अभाव ने नयें पुराने कई वापी-कूपों को जीवनहीन कर दिया है। इधर उनके अखण्ड स्रोत के रूप में जो-जो नदी-तालाब थे, उनका दोहन हो जाने से भी वे सूखते गये। अधिक गहाराई में जो जलस्रोत हैं उनका भी आज नलकूपों द्वारा दोहन हो जाने से भूगर्भस्थ जल का अभाव होता जा रहा है। इस प्रकार जलस्तर गिरता गया और गिरते जलस्तर के कारण पारम्परिक वृक्ष भी सूखते गये। यही नहीं, कृषि-उपयोग या बढ़ती बस्तियों के लिए तथा लकड़ी के व्यवसाय ने वृक्षों की बेरहमी से कटाई इस तेजी से की कि वे पारम्परिक वृक्ष लुप्त हो गये। परिणामतः जिन वनस्पतियों के आधार परम्परा जल-स्थान बताती रही, वे वनस्पतियाँ ही नहीं बचीं तो वहाँ जल का अवबोध कैसे हो सकता है। तब भी, अभी वनस्पतियाँ जहाँ बची हैं एवं मिट्टी, पत्थर आदि की पहचान से जलस्थिति का ज्ञान हो सकता है। यदि पुनः अच्छी वर्षा प्रतिवर्ष होती रहे, वन और वनस्पतियों की वृद्धि होती रहे, तो वराहमिहिर के बताये लक्षणों के आधार पर भूगर्भस्थ जल स्थान और उसकी गहराई को जाना जा सकता है। वैसे भी ये लक्षण ऐसे हैं जो न केवल भारत अपितु विश्वभर में कहीं भी उपयोगी हो सकते हैं और इन लक्षणों के आधार पर विश्व में कहीं भी भूगर्भस्थ जल की प्राप्ति के प्रयास किया जा सकते हैं।

वैसे तो लोक जीवन आज भी भूगर्भस्थ जल के कई लक्षणों को जानता है। गाँवों में आज भी सब जानते हैं कि जहाँ गूलर या उडुंबर का पेड़ है, वहाँ मीठा पानी मिलेगा। वे यह भी जानते हैं कि कुआँ खोदते समय काली चट्टान जब तक रहेगी, पानी नहीं मिलेगा परन्तु जैसे ही हरा पत्थर दिखाई देगा, उसमें पानी का स्रोत मिल जाएगा। लोक अनुभव सिद्ध ज्ञान की बहुधा रक्षा करता है। और रक्षित ज्ञान की वह अन्तःसलिला आज भी पूरे भारत के ग्राम जनजीवन में बहती जा रही है। तब भी पुरातन काल में प्रचलित कुछ नये नुस्खे आज भी उपयोग हो सकते हैं। सारस्वत और मनु के मतानुसार वराहमिहिर जहाँ भूगर्भस्थ जल की प्राप्ति की सम्भावनाओं की तलाश कर रहे हैं, वहीं राजा भोज विभिन्न प्रकार के जलों की मानव-स्वास्थ्य की दृष्टि से उपयोगिता को रेखांकित कर रहे हैं। इस प्रकार, सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में जल-विमर्श पर पर्याप्त अध्ययन हैं।

***

म.म. मधुसूदन ओझा प्रणीत

'अम्भोवाद' में जलतत्त्व की समीक्षा

डॉ.लक्ष्मीकान्त विमल*

पञ्चमहाभूतों में सबसे पहले उत्पन्न जल-तत्त्व पर वेद से पुराण पर्यन्त पर्याप्त दार्शनिक विवेचन हुआ है। इन सभी दार्शनिक विवेचनाओं को एकत्र कर म.म. मधुसूदन बिहार के मुजफ्फरपुर जिला के म.म. मधुसूदन ओझा ने कुल 336 कारिकाओं में 'अम्भोवाद' ग्रन्थ की रचना की। इसका प्रकाशन पं. मधुसूदन ओझा सीरीज-9 के अन्तर्गत डॉ. दयानन्द भार्गव के सम्पादन में पं. मधुसूदन ओझा प्रकोष्ठ, संस्कृत विभाग जयनारायणव्यास विश्वविद्यालय जोधपुर से 2002 ई. में हुआ है। इसी ग्रन्थ के आधार पर यह आलेख प्रस्तुत है।

पण्डित मधुसूदन ओझा का सामान्य परिचय

पण्डित मधुसूदन ओझा (1866-1939 ई.) 19वीं शताब्दी के संस्कृत आचार्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इन्होंने काशी की परम्परा में विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन अपने गुरु महामहोपाध्याय शिव कुमार शास्त्री से किया।

पण्डित ओझा ने गुरुदक्षिणा के रूप में वेदविद्या के वास्तविक अर्थ के उद्घाटन का संकल्प लिया। वेदार्थ को प्रकाशित करने के लिए गुरु के आज्ञा के अनुसार गम्भीर वेदाध्ययन में लगभग 50 वर्षों तक संलग्न हो कर वेदार्थानुसन्धान का कार्य किया। वेदविज्ञान को प्रकाशित करने के लिए मन्त्र-संहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों, वेदाङ्गों, रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों का मूलस्वरूप को जान कर वेद रहस्य को प्रकट करने के लिए लगभग 288 ग्रन्थों का प्रणयन किया।

पण्डित ओझा का वैदुष्य अपने समय में अत्यन्त विश्वविश्रुत था। सर्वतन्त्र स्वतन्त्र आचार्य के रूप में आपकी प्रतिष्ठा थी। महाराजा जयपुर के निकट सहयोगी के रूप में आप का कार्य सर्वत्र प्रशंसनीय रहा। ऐसे पण्डित ओझा के जीवनवृत्त विविध आयामों से परिपूर्ण है। पण्डित ओझा का जन्म बिहार प्रान्त के मुजफ्फरपुर जिले के 'गाढ़ा' नामक ग्राम में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के दिन 2 सितम्बर 1866 ई. को हुआ। इनके पिता का नाम पं. वैद्यनाथ ओझा और बड़े चाचा का नाम पण्डित राजीवलोचन ओझा था, जो उस समय के एक प्रसिद्ध विद्वान् थे। पं. मधुसूदन ओझा इन्हींके दत्तकपुत्र थे। उस समय जयपुर राज्य के महाराजा रामसिंह द्वारा पूर्ण संमानित हो कर उन्हींके राज्यसभा में रहा करते थे।

*मूलतः भारतीय दर्शन के परम्परागत अध्येता, वरिष्ठ शोधाध्येता, श्री शंकर शिक्षायतन, नई दिल्ली।

‘अम्भोवाद’ ग्रन्थ का परिचय

इस ग्रन्थ का अध्याय विभाजक शब्द अधिकार है। अधिकार के अन्तर्गत अधिकरण और अधिकरण के अन्तर्गत सूत्र है। प्रथम अधिकार का नाम द्रव-प्राथम्याधिकरण है। इस के पहले सूत्र में 1 से 12 पद्य हैं। इस सूत्र में एक ही विषय है जिसका नाम द्रव का विषयावतार के रूप में परिचय है। द्वितीय सूत्र में 13 से 22 पद्य हैं। इस में दोलारूप में द्रव की तनु और अवस्थागति तथा दोनों के और चार-चार प्रक्रमों में वायु आदि और तुषार आदि के रूप में परिणति। तृतीय सूत्र में 23 से 28 पद्य हैं। द्रव, देश तथा द्रव-देश रूप उभयगति, इन तीन रूपों में द्रव की द्रव्यरूप में परिणति। इस प्रथम अधिकार में ही चतुःसृष्ट्यधिकरण है। इस के प्रथम सूत्र में 1 से 3 पद्य हैं। इस में अप् की सत्यरूपता से चार प्रकार की सृष्टि का वर्णन है। द्वितीय सूत्र में 4 से 8 पद्य हैं। इसे लोक सृष्टि का, तृतीयसूत्र में 9 से 24 पद्य हैं। इसमें लोकसृष्टि का वर्णन लोकपाल के रूप में है।। चतुर्थ सूत्र में 25 से 30 पद्य हैं। इसमें अन्न सृष्टि का वर्णन है। पञ्चम सूत्र में 31 से 34 पद्य है। इसमें आयतनसृष्टि का वर्णन किया गया है।

द्वितीय अधिकार में पहला अधिकरण चतुर्व्यूहादिकरण है। इसके प्रथम सूत्र में 1 से 11 पद्य हैं तथा अम्भ से अप् की सृष्टि, द्वितीय सूत्र में 12 से 23 पद्य हैं। इस में अण्डस्थ सलिल से विराट् आदि क्रम में पृथिवी का वर्णन है। तृतीय सूत्र में 24 से 28 पद्य हैं। इसमें प्रजापति, ब्रह्मा, अत्ता, आद्य आदि भावों का उदय का वर्णन मिलता है। चतुर्थ सूत्र में 29 से 32 पद्य हैं। इस सूत्र में अग्नि-सोम रूप पुं-स्त्री भाव से देवनिकाय सृष्टि का वर्णन प्राप्त होता है। इस द्वितीय अधिकार में दूसरे अधिकरण का नाम विराड्व्यूहाधिकरण है। इस अधिकरण के प्रथम सूत्र में 1 मात्र पद्य हैं। इस का विषय पञ्चविध विराट् गणना के अन्तर्गत महाविराट्, क्षुद्रविराट्, जन्तुविराट्, भ्रूणविराट् एवं अतिविराट् नामक विषयों का उपस्थापन किया गया है। द्वितीय सूत्र में 2 से 4 पद्य हैं। इसमें पाँचों विराट् का स्वरूप वर्णित है। तृतीय सूत्र में 5 से 14 पद्य हैं। इस सूत्र के अन्तर्गत अतिविराट् एवं शेष चार वोराजों का साम्य-वैषम्य, अत्ता, आद्य, भूत, देव आदि भावों का विस्तार से वर्णन प्राप्त होता है। चतुर्थ सूत्र में एक मात्र 15 वां पद्य है। इसमें विराजों का परमेश्वर आदि रूप में विश्लेषण किया गया है। पाँचवें सूत्र में 16 से 18 पद्य हैं। इसमें विश्व-स्वरूप का वर्णन किया गया है। उपासना अधिकरण के अन्तर्गत प्रथम सूत्र में 19 से 20पद्य हैं। इसमें पूर्ववर्णित विराट् आदि तत्त्वों का उपासनार्थ विष्णु आदि के रूप में वर्णन मिलता है। दूसरे सूत्र में 21 से 24 पद्य हैं। इस के अन्तर्गत शेष हिरण्यगर्भ ब्रह्मा प्रजापति का तात्त्विक रूपों का वर्णन मिलता है। तृतीय सूत्र में 25 से 28 पद्य हैं। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूपों की समष्टि एक मूर्ति का वर्णन मिलता है। चतुर्थ सूत्र में 29 से 33 पद्य हैं। इसमें विष्णु के चतुर्विध रूपों का वर्णन मिलता है। तृतीय अधिकरण का नाम वैराजसृष्ट्यधिकरण है। इस अधिकरण में एक मात्र सूत्र है। इसमें 1 से 27 पद्य हैं। इसमें मुख्य रूप से ऋषि, पितर, देवासुर, गन्धर्व, मनुष्य संज्ञक प्राणविशेषों का भेदोपभेद गणना सहित स्वरूप तथा इनसे सृष्टि का उद्भव। चतुर्थ अधिकरण का नाम प्रातिस्विकाधिकरण है। इसमें भी एक मात्र सूत्र है। इस सूत्र में 1 से 35 पद्य हैं। इसमें आत्मा के मौलिक एवं यौगिक भेदों का कथन, वैश्वानर भावरूप व्यष्टि-समष्टि की प्रातिस्विक आत्मा का वर्णन।

तृतीय अधिकार में चार अधिकरण हैं। प्रथम दिव्याधिकरण में एक मात्र सूत्र है। इस में आपः तत्त्व की सर्वव्यापकता एवं इससे सूर्य आदि का उद्भव। दूसरे अधिकरण का नाम पञ्चदेवताधिकरण है। इसमें एक मात्र सूत्र हैं। 1से 31 पद्य हैं। इसमें पञ्चदेवों की अप्-मूलकता तथा उनसे संपूर्ण सृष्टियाँ। तृतीय अधिकरण का नाम एमूषाधिकरण है। इस में एक मात्र सूत्र हैं। 1 से 75 पद्य हैं। अप् का पृथिवीभाव में आने का क्रम, इसमें वराह का कार्य, विभिन्न वराहों का स्वरूप एवं एमूष का विस्तृत स्वरूप वर्णित है। चतुर्थ अधिकरण का नाम तरिलोक्यचित्यधिकरण है। इसमें एक मात्र सूत्र है। इसमें 1 से 11 पद्य हैं। अमृत-मृत्यु द्विरूपात्मक अप् के चित्य-चितेनिधेय रूपों से पञ्च चितियों द्वारा सृष्टि एवं चितिभाव का सर्वत्र अनुगमन का वर्णन प्राप्त होता है। पण्डित मधुसूदन ओझा प्रणीत ‘दशवाद-रहस्य’ नामक ग्रन्थ में ‘अम्भोवाद’ का वर्णन भी यहाँ उपलब्ध है।

इस प्रकार संपूर्ण 'अम्भोवाद' में कुल 336 पद्य है। जिसमें 323 अम्भोवाद का एव 13 पद्य दशवादरहस्य के है। यहाँ सूत्र से तात्पर्य विषयवस्तु से हैं। अष्टाध्यायी अथवा ब्रह्मसूत्र जैसा सूत्र यहाँ नहीं है।

जल-तत्त्व विषयक वैदिक सिद्धान्त

यदस्ति किञ्चित् तदिदं त्रिधेष्यते तनु-द्रव-प्राय-घन-प्रभेदतः।
दृष्टं च तेषां परिवर्तनं मिथोऽवस्थास्तदेकस्य मता इमास्त्रिधा॥[1]

इस संसार में जो कुछ भी हम प्रत्यक्ष अथवा बुद्धि से जानते हैं। उनके तीन नाम हैं-तनु, द्रव और घन। इन तीनों तत्त्वों में परस्पर परिवर्तन होता रहता है। ये तीनों तत्त्व किसी एक की ही तीन अवस्थाएँ प्रतीत होती हैं। पं. ओझाजी के इस वाक्य से साक्षात् जल का कोई सम्बन्ध स्पष्ट नहीं होता है। परन्तु अम्भोवाद ग्रन्थ के हिन्दी टीप्पणीकार ने बड़े ही वैदुष्यपूर्वक 'तनु' को जल का पर्याय सिद्ध किया है।

अमरकोश में 'तनु' शब्द का पर्याय पेलव शब्द और तरल शब्द है- पेलवं विरलं तनुः।[2]

तनु शब्द "तनु विस्तारे" धातु से सिद्ध होता है। वायुपुराण में तनु शब्द का अर्थ अप् अथवा अम्भ किया गया है।

[3]**आपो नारा वै तनव इत्यपां नाम शुश्रुम।**[4]

तदम्भस्तनुते यस्मात् सर्वां पृथ्वीं समन्ततः।[5]

धातुस्तनोतिर्विस्तारे तेनाम्भः तनवः स्मृताः।[6]

आपो नाराख्यास्तनवः इत्यपां नाम शुश्रुम।[7]

ऐतरेयोपनिषद् में अम्भ अथवा आप तत्त्व का विशद से वर्णन मिलता है। आत्मा ने क्रमशः अम्भ, मरीचि, मर और आप इन लोकों की रचना की।

स इमाँल्लोकानसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोदोऽम्भः।[8]

पण्डित ओझा जी ने इस का अनुवाद अम्भोवाद ग्रन्थ में किया है।

सत्यं यदव्यक्ततरं पुराऽसीत्तद् ब्रूमहे ब्रह्म ततः पुरस्तात्।
लोकाश्चचतुर्धा प्रबभूवरम्भो मरो मरीचिः पुनराप एताः॥[9]

इसी ऐतरेयोपनिषद् में इन चारों तत्त्वों के स्थान का निर्देश किया गया है। जो द्युलोक से ऊपर है और स्वर्ग जिसकी प्रतिष्ठा है वह अम्भ है, अन्तरिक्ष मरीचि है, पृथिवी 'मर' है और जो पृथिवी के नीचे है वह 'आप' है।

परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठान्तरिक्षं मरीचयः पृथिवी मरो या अधस्तात् ता आपः।[10]

इसका अनुवाद श्लोकबद्ध कारिका में पण्डित ओझाजी ने किया है।

दिवं परेणाम्भ इति प्रसिद्धं द्यौश्चान्तरिक्षं त्वभवन् मरीचिः।
मरस्तु पृथ्वी समभूदथाधो यल्लोकपालाद्यभवतदापः॥[11]

आचार्य शंकर का इस उपनिषद् पर भाष्य उपलब्ध होता है। जो इन चारों तत्त्वों को लोक (स्थान) के माध्यम से व्याख्यायित करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

1. अम्भोवाद पृ.1
2. अमरकोश 3.1.66
3. (अम्भोवाद, टिप्पणी भाग पृ. 89)
4. वायुपुराण 6.5
5. वही 7. 56
6. वही 7. 57
7. वही 7. 65
8. ऐतरेयोपनिषद् 1.1.2
9 .अम्भोवाद पृ. 11, कारिका 4
10. ऐतरेयोपनिषद् 1.1.2
11. अम्भोवाद पृ. 11, कारिका 5

- वह 'अम्भ' शब्द से कहा जाने वाला लोक है, जो द्युलोक से परे अर्थात् ऊपर है, वह जल को धारण करने वाला होने से 'अम्भ' शब्द से कहा जाता है।

तदम्भ:शब्दवाच्यो लोकः परेण दिवं द्युलोकात्परेण परस्तात्, सोऽम्भ:शब्द-वाच्यः, अम्भो भरणात्।[12]

- उस अम्भलोक का द्युलोक प्रतिष्ठा अर्थात् आश्रय है। द्युलोक से नीचे जो अन्तरिक्ष है वह मरीचिलोक है। वह एक होने पर भी अनेक स्थानभेदों के कारण 'मरीचयः' इस प्रकार बहुवचनरूप से प्रयुक्त हुआ है। अथवा किरणों से संबन्धित होने के कारण वह 'मरीचि' कहलाता है।

द्यौः प्रतिष्ठाश्रयस्तस्याम्भसो लोकस्य। द्युलोकादधस्तादन्तरिक्षं यन्मरीचयः। एकोऽप्यनेक-स्थान-भेदत्वाद् बहुवचनभाक् मरीचय इति, मरीचिभिर्वा रश्मिभिः संबन्धात्।[13]

- जहाँ पर जीव मरते हैं उस स्थान को मर कहते है। मर पृथ्वी का द्योतक है।

पृथिवी मरो म्रियन्ते अस्मिन् भूतानि।[14]

- जो लोक पृथ्वी से नीचे की ओर हैं, वे आप कहलाते हैं, क्योंकि 'अप्' शब्द आप् धातु से बना हुआ है। यद्यपि सभी लोक पञ्चभूतमय हैं तथापि अम्भ, मरीचि, मर और आप ये लोक आप (जल) की अधिकता होने के कारण 'आप' ही कहे जाते हैं।

या अधस्तात् पृथिव्यास्ता आप उच्यन्ते, आप्नोतेः, लोकाः। यद्यपि पञ्चभूतात्मकत्वं लोकानां तथाप्यबाहुल्यादब्नामभिरेवाम्भो मरीचीर्मरमाप् इत्युच्यन्ते।[15]

मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत दुर्गासप्तशती में भी इस संपूर्ण सृष्टि को जलमय माना है।

वञ्चिताभ्यामिति तदा सर्वमापोमयं जगत्।[16]

इसी प्रकरण में जलवाची सलिल शब्द का भी प्रयोग मिलता है।

आवां जहि न यत्रोर्वी सलिलेन परिप्लुता।[17]

वैदिक विज्ञान में पाँच मण्डलों के आधार पर इस विश्व को व्याख्यायित करने का प्रयास पं. ओझा जी ने किया है। ये स्वयम्भूमण्डल, परमेष्ठिमण्डल, सूर्यमण्डल, पृथ्वीमण्डल और चन्द्रमण्डल। परमेष्ठीमण्डल का अप् तत्त्व से संबन्ध है। परमेष्ठी नामक आपोमय प्रजापति सृष्टि के लिए प्रवृत्त हुए। उन्होंने श्रम और तप किया। इससे एक संवत्सर काल वह हिरण्यमय अण्ड बना।

आपोमयोऽसौ परमेष्ठिनामा प्रजापतिः सृष्टिविधोन्मुखः सन्।
आश्रम्य देवं तपश्च तेपे संवत्सरेऽभूत् तु हिरण्यमाण्डम्॥[18]

यह विषय ऐतरेयोपनिषद् में यथावत् कहा गया है कि जल से ही एक पुरुष निकालकर अवयवयुक्त किया। उस पुरुष के तप से अण्डभाव उत्पन्न हुआ।

सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत्। तम् अभ्यतपत् तस्याभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डम्।[19]

मूर्ति अर्थात् स्थूल जगत् की सृष्टि जल तत्त्व से ही मानते हैं।

12. ऐतेरेयोपनिषद् शांकरभाष्य 1.2.1
13. ऐतेरेयोपनिषद् शांकरभाष्य 1.2.1
14. ऐतेरेयोपनिषद् शांकरभाष्य 1.2.1
15. ऐतेरेयोपनिषद् शांकरभाष्य 1.2.1
16. दुर्गासप्तशती 1.100
17. वहीं, 1.101
18. अम्भोवाद पृ. 12, कारिका 10
19 ऐतेरेयोपनिषद् 1.1.3-4

आभ्योऽद्भ्य एव प्रबभूव मूर्तिः।[20]

आगे विषय को स्पष्ट करते हुए पं. ओझाजी ने जल से पृथ्वी की उत्पत्ति की प्रक्रिया को उपस्थापित किया है। अप् और वायु के परस्पर संयोग से अप् में रूक्षता और जल में स्थिरता आ जाती है। परस्पर के संयोग से अप् का स्नेहभाव अर्थात् गीलापन और वायु का गतिभाव अपने आप परिवर्तित हो जाता है। अत एव अन्न और प्राण से एक सघन वस्तु का निर्माण होता है। उसी का नाम मिट्टी है।

अपां च वायोश्च मिथः प्रसङ्गादपां खरत्वं स्थिरता च वायौ।
निष्पद्यते तेन घनोऽयमर्थोऽन्नप्राणवान् कश्चिदुदेति सा मृत्॥[21]

सूर्य की उत्पत्ति समुद्र होती है। यह बात स्पष्टता से पं. ओझा जी ने कहा है।

अद्भ्यः समुद्रात् स उदेति नित्यं सूर्यः।[22]

जहाँ तक सूर्य प्रकाशित होता है, वहाँ तक के अण्ड आकाश को चारों ओर से घेर कर ये आपः अवस्थित हैं। यह सूर्य समुद्र के गर्भ में ही चमकता है। अतः इस सूर्य को नारायण कहा जाता है।

यावद् विभात्येष रविस्तदण्डंह्यापः समन्तात् परिवार्य तस्थुः।
समुद्रगर्भे स हि भाति तस्मानारायणं सूर्यमिमं वदन्ति॥[23]

वरुण सोमदेवतात्मक आपः लोक से ये आपः क्रमशः सूर्यमण्डल में प्रवेश कर पुनः वहाँ से चन्द्रमण्डल में गये। वहाँ से वे मेरु शिखर पर आये। नीहारयुक्त उन आपः को मैं गंगा कहता हूँ।

आपः क्रमाद् भास्कर-मण्डलेऽपि प्रविश्य ता ऐन्दव-मण्डलेऽगुः।
ता मेरुर्मूर्धन्यपतन् पृथिव्यां नीहारवत्तां प्रवदामि गङ्गाम्॥[24]

पं. ओझा जी ने आपः तत्त्व को विस्तार पूर्वक समझाते हुए कहते हैं कि आपः से ही यह संपूर्ण सृष्टि बनी है। आपः तत्त्व ने समस्त सृष्टि को व्याप्त कर रखा है। अतः ये आपन कर्म से आपः कहलाते हैं।

अद्भ्यो हि सृष्टिः प्रबभूव सर्वा सर्वं यदाप्नोत् तत आप एताः।[25]

पुनः पं. ओझा जी ने आपः तत्त्व को जल के पर्याय वाचक सलिल को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है। ये आपः तत्त्व पहले सलिल रूप में थे। सलिल ने तप और श्रम किया। इनके तप से इस सृष्टि में हिरण्यमय अण्ड प्रकट हुआ।

आपः समस्ताः सलिलं पुरासीत् तच्चेदमश्राम्यदतप्यतादौ।
पतश्च तस्मिन्निह तप्यमाने हिरण्यमाण्डं तदु संबभूव॥[26]

पं. ओझा जी ने परमेष्ठिमण्डल को आपोमय सिद्ध किया है। उनहोंने विस्तार से इस विषय को स्पष्ट करते हुए लिकहते हैं कि पृथ्वी को खोदते हुए लोग उसके भीतर (जलरूप में) अप् को प्राप्त करते हैं। ऊपर स्थित सूर्य मण्डल से भी वर्षा के रूप में अप् ही बरसता है। ये आपः चारों ओर परमस्थान में स्थित हैं। अतः परमेष्ठी नामा वाले हैं। उस परम स्थान को अणु से भी अणुतर और महत् से भी महत्तर मानते हैं। उस परम स्थान में बाहर भीतर सभी जगह एक मात्र यह आपः तत्त्व व्याप्त है। इनको परमेष्ठी कहा गया है।

पृथ्वीं खनन्तोऽन्तरपो लभन्ते वर्षन्ति चाद्धा दिव एवमापः।
स्थाने स्थितास्ताः परमे समन्ताद्यतस्ततस्ताः परमेष्ठिसंज्ञाः॥

20 अम्भोवाद पृ. 16, कारिका 28
21 वही, पृ. 22, कारिका 1
22 वही, पृ. 54, कारिका 4
23 वही, पृ. 54, कारिका 5
24 वही, पृ. 54, कारिका 6
25 वही, पृ. 56, कारिका 2
26 वही, पृ. 57, कारिका 3

अणोरणीयः परमं वदन्ति स्थानं तथा यन् महतो महीयः।
अन्तर्बहिः सर्वगतं यदेकं व्याप्तं तदुक्तं परमेष्ठिसंज्ञम्॥[27]

पृथ्वी की उत्पत्ति के विषय में पं. ओझा जी तैत्तिरीय ब्राह्मण के आधार पर उपस्थापित करने का प्रयास किया है। अप् का विकार मर हुआ, मर से उत्पन्न अर्थ को ही पृथ्वी कहते हैं। इस विषय को प्राचीन काल में तैत्तिरीयों ने जिस रूप में प्रस्तुत किया है, उसे उसी रूप मे इस ग्रन्थ में रखने का प्रयास किया गया है।

अपां विकारस्तु मरस्ततोऽभूत् पृथ्वीति यत् प्राहुरिमं तदर्थम्।
प्राक् तैत्तिरीया अवदन् यथावन्निरूप्यते संप्रति तत्तदुक्त्या॥[28]

ये अप् ही सत्य हैं। इस सृष्टि में सत्यधर्म से ही ये सत्यरूप अप् सदैव अपनी नियत निम्नगामी गति रखते हैं। सत्य से संबद्ध स्वरूप वाला सदैव नम्र होता है। वह कदापि उद्धत नहीं होता है। सत्य में शान्ति की प्राप्ति होती है।

आपो ही सत्यं तत एव नित्यं यान्त्याप एता इह सत्यधर्मात्।
सत्यान्वितात्मा भवतीह नम्रः स्यान्नोद्धतः शान्तिमुपैति सत्यात्॥[29]

इस प्रकार इस अम्भोवाद ग्रन्थ में पण्डित ओझा जी ने अनेक दृष्टि से अप् तत्त्व का विश्लेषण किया है। भारतीय दर्शन में पञ्चभूतों के अन्तर्गत जल तत्त्व की व्याख्या की गयी है। परवर्ती साहित्य में गंगा का वर्णन, समुद्र का वर्णन, नदी का वर्णन और वर्षा का वर्णन व्यापक रूप में प्राप्त होता है। आज सभी मानते हैं कि पृथ्वी की अपेक्षा जल की व्यापकता अधिक है।

***

27 वही, पृ. 61, कारिका 19-20 28 वही, पृ. 64, कारिका 1 29 वही, पृ. 64, कारिका 2

अग्रिम अंक जगन्नाथ-विशेषांक का विशेष आकर्षण

"परशुराम-कथामृत का आलोचनात्मक अध्ययन"

धर्मायण, अंक संख्या 105 में गिरिधर दास द्वारा प्रणीत अवतारकथामृत महाकाव्य से उद्धृत 'परशुराम-कथामृत का प्रकाशन किया गया था। इस अंश में कवि ने भगवान् परशुराम की सम्पूर्ण तथा विस्तृत कथा दी है। राँची विश्वविद्यालय के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ.जंग बहादुर पाण्डेय 'तारेश' द्वारा प्रस्तुत शोधालेख का प्रकाशन अग्रिम अंक में किया जा रहा है।

जलतत्त्व का दार्शनिक विमर्श

डॉ.सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य*

इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति एवं लय में जल की सत्ता दार्शनिकों ने स्पष्ट की है। इसी जलतत्त्व के प्रति अपनी आस्था के कारण गणेश, वरुण एवं अब्देवी की उपासना की भी परम्परा रही है। लेखक ने स्पष्ट किया है कि जो दिव्य जल है, उसके साकार रूप में हम गणेश तथा कलशाधिष्ठित वरुण की पूजा करते हैं। मूर्ति-पूजा का सम्बन्ध कहीं न कहीं से सूक्ष्म दार्शनिकता से तो अवश्य है!

जलतत्त्वं नमस्यामि परब्रह्मस्वरूपकम्।
जायते जीवनं यस्मात् मध्यान्ताभिधायकम्॥

पञ्चभूतात्मक जगत् के पञ्चभूताधिष्ठातृदेव पञ्च परब्रह्म के रूप में वैदिक-परम्परा में सादर पूज्य एवं प्रतिष्ठित है, जिसके नामरूप 'वाचस्पत्यम्' कोश के अनुसार-

आदित्यं गणनाथं च देवीं रुद्रञ्च केशवम्।
पञ्चदैवतमित्युक्तं सर्वकर्मसु पूजयेत्॥[1]

इस निर्देशानुसार सभी शुभकर्मों सम्पादन के पूर्व सूर्य, गणेश, देवी, रुद्र, केशव इन समवेत स्वरूप का पञ्चदेव के अन्तर्गत पूजनविधान अद्यावधि प्रतिष्ठित है। यहाँ भी ध्यातव्य है कि पञ्चदेवों में सर्वप्रथम गणेश-पूजन ही होता है, क्योंकि सृष्टि के आदि में विद्यमान जलतत्त्व के अधिपति गणपति हैं। अतः वैदिक समस्त शुभकर्मों के पूर्व गणेश-पूजन का कारण उनका जलतत्त्वाधिपतित्व ही है।

पञ्चभूताधिपति का प्रमाण

सुस्पष्ट सर्वविदित है कि-

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरः।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥[2]

यहाँ पर द्रष्टव्य है कि जल को 'जीवन' शब्द से प्रतिष्ठित किया गया है। अर्थात् जल जीवन है, जिसे आधुनिक विचारकों ने भी सश्रद्ध आदृत किया है- "जल ही जीवन है।" यह जनोद्घोष सर्वदा सर्वथा वैदिक विचारधारा का अनुसरण है। सृष्टि के आरम्भ में जल-तत्त्व का सर्जन तथा सृष्टि-संचरण में जल का अस्तित्व वेदादि-प्रमाण में सुस्पष्ट आदृत है।

मनुस्मृति का यह प्रमाण विशेष द्रष्टव्य है-

सोऽभिध्याय शरीरात् स्वात् सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जादौ तासु वीर्यमवासृजत्॥8॥[3]

परब्रह्म परमात्मा ने सृष्टि की कामना से ध्यान कर सर्वप्रथम जल की सृष्टि की। उस जल में

[1] तारानाथ तर्कवागीश, वाचस्पत्यम्, पञ्चन् शब्द की व्याख्या में उद्धृत, 2006 ई., पुनर्मुद्रण, राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली,

[2] कल्याण, साधनाङ्क अङ्क 54, पृष्ठ 11, कपिल तन्त्र से उद्धृत

3 मनुस्मृति 1.8

*व्याकरणाध्यापक, श्रीराम संस्कृत महाविद्यालय, सरौती, अरवल। पटना आवास- ज्योतिषभवन, शिवनगर कालोनी, मार्गसंख्या 10, बेऊर जेल के पीछे, पटना।

सर्जनशक्तिसम्पन्न बीज का वपन किया, जिससे चराचर जगत् अस्तित्व में है। यहाँ पर विशेष ध्यातव्य है कि चराचर जगत् के सृष्टिकारकशक्तितत्त्व का संवाहक जल ही है, अतः सृष्टि से पूर्व जल का अस्तित्व होना निसर्गतः अनिवार्य है। ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में भी इसी बात का संकेत किया गया है- **अम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥**[4] यह संवाहक अर्हता जलातिरिक्त किसी भूत पदार्थ में नहीं है। अतः पञ्चभूतों में जलतत्त्व सर्वाश्रय, सर्वारम्भक आदि सर्जक है।, जिनके अधिपति होने से गणेश का पूजन प्राथम्य दार्शनिक विवेच्य कारण परिधि में सर्वथा समुचित सुग्राह्य है। आज भी चराचर जगत् उत्पत्ति में सर्जक संवाहक जलतत्त्व नितरां सुतरां सिद्ध है। समुचित जलतत्त्व के समुचित समन्वय से सृष्टिशिरोमणि मानव का उद्भव एवं विकास अग्रसर है।

जलतत्त्व के समुचित समन्वय के निहितार्थ को समझकर सर्जन शक्ति की अग्रसरता में शुभकारक सर्वहितकारक चराचर जगत् प्रभु के संकल्प के अनुसार तदनुकूलता का संवाहक होगा, तथा ध्रुव, प्रह्लाद, रन्तिदेव हरिश्चन्द्र, विभीषण, शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, रामानन्दाचार्य प्रभृति पूज्यपंक्ति प्रतिष्ठित होगी। मंगलमय प्रभु का चराचर जगत् निश्चित मंगलमय होगा। वस्तुतः इसी जलतत्त्व के संरक्षण, संवर्द्धन सदुपयोग तथा समन्वय के अभाव में चराचर जगत् की मंगलता क्षीण हो रही है।

ब्रह्मवाचक जल

गणपति तथा जल का संबन्ध- शब्दवाच्यार्थ समता की परिधि में 'जल' शब्द भी परब्रह्म का बोधक है। वेदान्तसूत्र "आकाशस्तल्लिंगात्"[5] इस न्याय से, जिसमें ब्रह्मतत्त्व के गुण जगदुत्पत्ति-स्थिति-लय लीलत्व, जगन्नियन्तृत्व, सर्वपालकत्व आदि शक्तियों की विद्यमानता हो, वही ब्रह्म है। जैसे "इमानि भूतानि आकाशादेव"[6] के अनुसार जगदुत्पत्ति-स्थितिकारणत्व से आकाश पदवाच्य ब्रह्म माना गया है। उसी प्रकार, **यस्माज्जायते यस्मिन् लीयते इति जलम्** इस व्युत्पत्तिसामर्थ्य से जगदुत्पत्ति-स्थिति-लयशीलता के कारण जलपदवाच्य ब्रह्म है। मनुस्मृति में भी स्पष्ट है- अप एव ससर्जादौ इत्यादि। इसी प्रकार गणपति-पदवाच्य भी ब्रह्म है। गण शब्दः समूहवाचकः परिगणितः तेषां गणानां पतिः गणपतिः। जल के उद्गम स्रोत की विभिन्नता से उसका समवेत नाम- गण है, तस्य पतिः गणपतिः। अथवा निर्गुण-सगुणब्रह्मगणानां पतिः गणपतिः अर्थात् त्रिविध गणों को सत्ता स्फूर्ति देनेवाला।

अप् आपः

'आप्लृ व्याप्तौ' धातु (स्वादि, आत्मनेपदी, अनिट्) से "आप्नोतेर्ह्रस्वश्च"[7] से क्विप् तथा ह्रस्व होने पर 'अप्' शब्द बनता है। **निर्मलादिभिर्गुणै आप्नुवन्ति जनान् वा आप्यायन्ते जनाः अति अप्।** इस शब्द का प्रयोग केवल केवल बहुवचन तथा स्त्रीलिंग में ही होता है, अतः 'अप्' शब्द का ही बहुवचन 'आपः' और विकल्प से 'अपः' प्रयुक्त शब्द है। अप् शब्द तत्त्वावधायक है। स्वनैसर्गिक निर्मलता, अविरलता, तरलता, सरलता तथा सात्त्विकता प्रभृति गुणों से जो विश्वजन को आप्यायित करे या जिससे विश्व आप्यायित हो- वह अप् है, जो जगत्सृष्टिकारणता के कारण ब्रह्म है। यह निमित्तोपादान कारण सूक्ष्मचिदचिद्विशिष्ट का वाचक है। जल ब्रह्ममय शक्ति स्थूलचिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म का वाचक है। अतः स्वभावतः जीवात्मस्वरूप की प्राप्ति की अग्रसरता साधन, सिद्धि, प्राप्ति अर्हता के लिए प्रत्येक पुण्यश्लोक मुमुक्षु जीवों के लिए सर्वप्रथम अनिवार्य परिधि में निर्मलतादि गुणों का संचार अनिवार्य है। अतएव सुतरां नितरां वैदिकधर्मानुष्ठान के प्रारम्भ में जलतत्त्वगुण संचारार्थ गणपति-पूजन सर्वदा स्वीरणीय तथा पालनीय है। निर्मल, सरल, तरल, सात्त्विक संचारार्थ जलस्नान से गणपति पूजनारम्भ अनुष्ठानपूर्व की पुण्यपूत परम्परा अद्यावधि प्रचलित है। अनुष्ठान करने की अर्हता में केन्द्राधिष्ठान जल तथा

4 ऋग्वेद, 10.129.1
5 वेदान्त सूत्रम्, 1.1.22
6 नृसिंहपूर्वतापिनीयोपनिषद् (3.3)
7 पाणिनीय सूत्र 3.2.58

जलाधिपति गणपति का वैश्विक अक्षुण्णता के लिए पूजन-सम्बन्ध परमावश्यक है। जलतत्त्व में सर्वभूत पदार्थों के रक्षणसामर्थ्य की अक्षुण्णता के लिए जल के शैत्य गुण का प्रयोग निरन्तर अग्रसर है।

एतावता जलतत्त्व के गुणों में मुख्य रूप से छह रूपों का संचार है- 1. शीतलता, 2. निर्मलता, 3. अविरलता, 4. तरलता, 5. सरलता, 6. सात्त्विकता। न्यायदर्शन में जल का मुख्य लक्षण है- **"शीतस्पर्शवत्य आपः"**[8] अर्थात् समवाय सम्बन्ध से जो शीतस्पर्शगुण का आश्रय हो, उसे 'अप्' या 'आपः' कहते हैं। उष्णजल की ऊष्णता तो अग्निसम्बन्ध से होती है। स्वाभाविक गुण तो शैत्य ही है। स्वाभाविक निर्मलादि सात्त्विक गुणों के संचारार्थ पुण्यपूत, तपःपूत ऋषियों का आश्रयस्थल पूर्व से ही हिमालय का क्षेत्र रहा है।

जल-स्नान की महिमा

अनुभव सिद्ध है कि स्नानमात्र से ही व्यक्ति सात्त्विक भाव से युक्त हो जाता है। पवित्रता, निरलसता, सहजता, शुभता के संचार से अनुष्ठान की अर्हता आती है। अतः सनातन परम्परा में दैनिक जीवन में स्नान प्रतिदिन प्रथम विहित आचार है, जिसका शुभाशय है- निर्मल आत्मा में निर्मलता के संचार के लिए प्रथम निर्मल स्वरूप जलब्रह्म के सम्बन्ध से हिन्दूजीवन अग्रसर होता है। जो सजातीयों के मध्य ही संगम सुगम, सुलभ तथा शुभद होता है। परमात्मा निर्मल-आत्मा की भी निर्मल निर्मल-सजातीयता के कारण ही आत्म-परमात्मा का सम्बन्ध-सम्बन्धी की नित्यता में नित्य निर्मल संगम सुलभ, सुगम, शुभद तथा शाश्वत हितकर है। संसार तो मलाशय है, अतः विजातीय संसार के साथ निर्मलात्मा का सम्बन्ध सुगम, शुभद, हितकर हो ही नहीं सकता।

अतः निर्मल जलतत्त्व का सम्बन्ध प्रत्यक्ष प्रत्येक जीव से स्वभावतः शुभद है। परन्तु अत्यन्त दुःख का विषय है कि आज की युवा पीढ़ी इस सर्वथा शुभद वैदिक स्नानविधि का महत्त्व न दे रही है। कई-कई दिनों पर स्नान करते हैं। बाहरी सज्जा से सज्जित होकर कृत्रिम सौरभ का आश्रय ले अपूत जीवन को पूत मानते हैं, जिसका कुफल, कुकृत्य-नृत्य अग्रसर है। इससे विश्व विविध पापातपों से बहुविध पीडित है। एतावता जलतत्त्व का संरक्षण तथा सम्बन्ध विश्वकल्याणार्थ अनिवार्य है।

विशेष ध्यातव्य है कि मात्र मानव योनि प्राप्त होने से प्रत्येक मानव जन्मजात साधक है। सत्संग साधक का स्वधर्म है। सत्संग के स्वधर्मनिष्ठ होने से साधक धर्मात्मा, जीवन्मुक्त तथा सिद्ध महापुरुष भक्त हो सकता है। सत्य स्वीकृति ही सत्संग है जो निसर्गतः स्वशक्तिसंसाध्य है। बाह्य कारण निरपेक्ष है। सत्संग मानव का स्वधर्म है। एतदर्थ पराक्रम-परिश्रम अपेक्षित नहीं है। जहाँ पराक्रम परिश्रम है, वह सत्संग नहीं है। पृथ्वी पर तीन भाग जल है। मानव शरीर में भी तीन भाग जल है। इस जलज तत्त्व के अनुसार शाश्वतता के अभिमुख्यार्थ प्रतिदिन जलाधिपति गणपति-पूजन अनिवार्य है। इसी शाश्वत सत् गणपति (जलतत्त्व) का संग ही सत्संग है, जिसमें निर्मलतादि छह गुणों का बाह्य कारणनिरपेक्ष स्वाभाविक संचार हो। यही किसी सिद्ध सन्त महापुरुष की परिभाषा भी है, जिनके सामीप्य मात्र से उक्त गुणों का संचार हो सकता है जो सत् है।

विवेक प्रकाशक के रूप में

बोधगम्य है कि शरीर और संसार आत्मतत्त्व की भिन्नता है, जो जातीय भिन्नता है। जो जातीय भिन्नता हो जिससे जातीय भिन्नता हो उससे नित्य योग तथा आत्मीय सम्बन्ध नहीं हो सकता है। इस दृष्टि से जो अनुत्पन्न, अविनाशी, स्वाधीन, रसरूप, चिन्मय अनादि अनन्त तत्त्व है इसी से आत्मस्वरूप का निर्मलादि गुणों के कारण सजातीय एकता है, जिससे एकता होती है, वहीं अपना होता है। इस प्रकार विभिन्न नामरूपों में शब्दाभिवाच्य ब्रह्म ही जीवात्मा का अपना होता है। इन्ही दोनों का सम्बन्ध शाश्वत शुभद है। इसी शक्ति के संचार के लिए प्रतिदिन जलतत्त्वसम्बन्ध अनिवार्य है। सम्पूर्ण पदार्थों- रस, रसायनों

[8] अन्नम्भट्ट, तर्कसंग्रह, पदार्थ-विवेचन

का भी मूल कारण जलतत्त्व ही है। जहाँ भी जिस रूप में जो रस है वह जलतत्त्व है। सजलता, सरसता एवं तरलता के कारण ही प्रेम रस, दया रस, करुणा रस नेत्राश्रुओं के कारण भाव व्यवहार के द्वारा प्रकट होते हैं।

अभाव में विकल्प के रूप में जल

विशेष ध्यातव्य है कि "**सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्**" सर्वपदार्थाधिगम तत्त्व अप् में प्रतिष्ठित है। अतः इष्टदेव के समक्ष जलमात्र के समर्पण से सर्वपदार्थसमर्पण का फल मिल जाता है। अतः पूजाविधि में किसी विहित पदार्थ के अभाव में मात्र जल समर्पण से उस पदार्थ की पूर्ति हो जाती है- "**अभावे तु जलं दद्यात्।**" इस प्रकार भी सर्वतत्त्वाधायक जल पदार्थ है।

जलतत्त्व का वैदिक पद्धति में व्यावहारिक स्वरूप-विवरण

"**जीवनस्य गणाधिपः**" के अनुसार प्रतिदिन मानव जीवन के अभ्युदयार्थ जलतत्त्व के निर्मलादि सात्त्विक गुणों के संचारार्थ गणपति का पूजन, वन्दन, नमन, ध्यान अनिवार्य है। जीवन में प्रतिक्षण गुणगान संचरण का स्थैर्य तथा नैरन्तर्य आत्मस्वरूप का प्रतिष्ठापक होगा। यही है- स्वसापेक्ष नित्य स्वाश्रयी सहज सत्संग। यह सर्वथा अन्तरंगस्थ है। उस अन्तरंग सच्छक्ति के जागरणार्थ ब्रह्मबोधक किसी भी नामरूप का जप एवं ध्यान प्रातः से अग्रसर होना चाहिए। जलतत्त्व सर्वभूतहितकर शक्ति का संवाहक है। अतः जलस्नान से जीवन अग्रसर कर मानव जीवनोद्देश्य को सफल करना चाहिए। ब्राह्म मुहूर्त वह स्नान द्विविध रूपों अग्रसर मानसिक शुचिता भी स्नान है, क्योंकि वहाँ भी जलतत्त्व निर्मलादि सात्त्विक संचार ही होता है। जलतत्त्व व्यापकता का व्यावहारिक दर्शन गणपति-पूजन में दूब का सर्वाधिक महत्त्व है। तीन दलों वाला 5 या 11 दूर्वादल का समर्पण सर्वाधिक प्रसन्नताकारक होता है। दूब कभी सूखता नही है, क्योंकि वनस्पति पदार्थों में दूब पर्याप्त जलतत्त्वावधायक है। इसलिए जलपति गणपति के साथ जलतत्त्वावगाहक दूब का भी सम्बन्ध जलतत्त्व का ही प्रतिष्ठापन है।

देवी के रूप में जल- अब्देवी

वैदिक यज्ञविधि या गृहप्रवेशादि शुभकार्यों में यज्ञविहित देवपूजन का विधान है। जिसमें ग्रहवेदी पर विहित स्थान पर देवपूजन होता है। इसमें सोमप्रत्यधिदेवता के रूप में अप् देवी की पूजा होती है। यह अप् देवी भक्तों के कल्याणार्थ अनेक रूपों को धारण करती है। यहाँ देवी ही वर्षा का मूल कारण है। इसी जल को सूर्यदेव अपनी रश्मियों से आकृष्ट कर अन्तरिक्ष में पहुँचाते हैं और इन्द्रदेवता इसे वज्र से विदीर्ण कर वर्षा के रूप में देते हैं। इसलिए अप् देवी का पूजन विहित है। इसमें प्रार्थना है- आप इसी प्रकार सदा कल्याण प्रदान करती रहे- "यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।"[9]

इसी देवी-शक्ति के संचार से वरुण, सोम अन्नसृष्टिकारक होते हैं। यही देवी सृष्टि के आदि कारणस्वरूपा है। इन्हीं पर प्रलयावस्था में ब्रह्माण्ड का अधिकार होता है। जिसमें विश्व का समष्टि स्वरूप विद्यमान रहता है। परब्रह्म का संकल्प- "**एकोहं बहु स्याम**" होते सृष्टि प्रारम्भ हो जाती है। प्रथमोत्पन्न हिरण्यगर्भ में जनयित्री शक्ति से सम्पन्न इस अब्देवी का दर्शन किया था- जिनका इस रूप में ध्यान वर्णित है-

आपः स्त्रीरूपधारिण्यः श्वेता मकरवाहनाः। दधानाः पाशकलसौ मुक्ताभरणभूषिताः॥[10]

श्राद्ध विधि में भी पिण्डदान के आगे अब्देवी का प्रर्थना की जाती है। "शिवा आपः सन्तु।" अब्देवी कृपा प्रसन्नता से अग्रिम वंशजों की जल में डूबने से मृत्यु नहीं होती है। इस प्रकार, जलतत्त्व का विविध रूपों में सम्बन्ध है।

[9] ऋग्वेद 7.43.5

[10] नीलकण्ठ भट्ट, प्रतिष्ठामयूख, चौखम्भा संस्कृत सीरीज, 1925 ई., वाराणसी, शान्तिमयूख, पृष्ठ 37. एवं वाचस्पत्यम्, पूर्वोक्त. ग्रहयज्ञ शब्द की व्याख्या में उद्धृत। भाग 3

जलाधिपति वरुण कलशस्थापन के परिप्रेक्ष्य में

जलतत्त्व को सभी शुभकार्यों के पूर्व कलशस्थापन विधि में कलश में अपाम्पति वरुण के रूप में पूजन विहित है। जलतत्त्व संचरण की अग्रसरता में समुद्रमन्थन से 14 रत्नों में जलरत्नधारक कलश परिगणित है, जिसके विना कोई वैदिक कर्म नहीं किया जाता है। यह अनुष्ठान की अर्हता जलतत्त्व सम्बन्ध के विना सम्भव नहीं है। इसका प्रारम्भ शुचीकरण से होता है। सर्वतीर्थाभिमन्त्रित जल को हाथ में लेकर-

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपिवा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्यभ्यन्तरः शुचिः॥

यहाँ भी पुण्डरीकाक्ष से जलतत्त्व ही संचरित है। जलतत्त्व का आधार कलशमात्र में सर्वदेवशक्ति का संचरण है। अतः प्रथम कलशस्थापन होता है। इसके भी अधिष्ठातृदेव वरुण हैं। कलश मानव जीवन के लिए सर्वश्रेष्ठ शुभसंदेश का प्रेरक है। अपने आकार के कारण यह मस्तिष्क का स्वरूप संवाहक है।

यहाँ जलतत्त्व के पुरुषवाचक 'वरुण' शब्द से वाच्य उसी आदिकारण अप् का पूजन है। 'वृञ् वरणे' (स्वादि, उभयपदी, सेट्) धातु से "कृवृदारिभ्य उनन्"[11] सूत्र से 'उनन्' प्रत्यय द्वारा 'वरुण' शब्द की सिद्धि होती है। "व्रियते वृणोति वा इति वरुणः" अर्थात् जिस जलतत्त्वशक्ति का कार्यसापेक्षता की सीमा में वरण अर्थात् स्वीकार किया जाता है, वह वरुण देवता है। समस्त वैदिक शुभकर्मों के सम्पादनानुकूल अर्ह्ता संचार के लिए जलतत्त्व शक्ति पूजन विहित है। वरुण देवता द्वादश आदित्यों में भी परिगणित हैं। वेद ने इन्हें प्रकृति के नियमों का व्यवस्थापक माना है। वेद में ऐसा वर्णन है कि वरुणदेव के विधान के कारण ही द्युलोक और पृथ्वीलोक पृथक्-पृथक् प्रतिष्ठित हैं। वे ही आदित्य रूप से दिन में प्रकाश देते हैं तथा रात्रि में चन्द्र और तारों को प्रकाशित करते हैं, इस प्रकार जगत् के प्राणी को अंधकार से बचाते हैं।[12] इसी आशय की पुष्टि "अपामधिपतिः" इस अथर्ववेद में उक्त वरुण की उपाधि से भी होती है।[13] इनके दो वाहन हैं- मकर और रथ।[14] इनके आयुध पाश हैं, जिसे 'नागपाश विश्वजित्' भी कहते हैं। अतः वरुण का एक नाम 'पाशी' भी है। गाण्डीव और तूणीर भी इनके आयुध हैं।

परवर्ती साहित्य में वरुण के पिता कश्यप तथा माता अदिति माने गये हैं। इनकी दो पत्नियाँ- 'देवी' एवं 'पर्णाशा' है। दोनों को 'वरुणानी' कहा गया है। पाणिनि के काल में वरुणानी की प्रसिद्धि के कारण स्त्रीलिंग-विधायक सूत्र— "इन्द्रवरुणभवशर्व" (4.1.49) इत्यादि से वरुण की शक्ति वरुणानी की सिद्धि होती है। ज्येष्ठा पत्नी से स्थल नामक एक पुत्र तथा वारुणी नामक पुत्री का उल्लेख हुआ है। राजा जनक की सभा के शास्त्रार्थी विद्वान् बन्द वरुणदेव के ही पुत्र थे, जिसने महाभारत में स्वयं स्वीकार किया है।[15] दूसरी पत्नी पर्णाशा शीततोया महानदी पर्णाशा की अधिष्ठातृ देवी हैं। इनका पुत्र शतायुध नाम से विख्यात है।[16] तीसरी पत्नी का नाम चर्षणी है, जिनके पुत्र भृगु हुए हैं।[17] बाल्यावस्था से ही भृगु आत्मज्ञान की प्रभा से दीप्त थे। वरुण ने भी इन्हें आत्मज्ञान का उपदेश किया था[18] इस प्रकार कार्यसापेक्ष जलतत्त्वावधारक वरुणदेव वैदिक उपास्य देवों में हैं।

इस प्रकार जलतत्त्व का संरक्षण विश्वहितार्थ परम अनिवार्य है। इसकी निर्मलता, अविरलता, तरलता, सरलता, सात्त्विकता तथा अक्षुण्णता में विश्व अस्तित्व में रहेगा।

जलाधिपाय देवाय सर्वगुणाय सृष्टये। आदिबीजाय भद्राय निरन्तरं नमो नमः॥

निर्मलता का नैरन्तर्य तथा स्थैर्य ही शुभ जीवन है।

***

11 पाणिनीय सूत्र 3.5.53

12 ऋक् 7.65.1-5- प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्। ययोरसुर्यमक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥1॥

13 अथर्ववेद, 5.14.4 ॐ वरुणो अपामधिपतिः स मावत्वस्मिन् ब्रह्मण्यस्मिन् क्षत्रेस्यामा शिष्यस्यां पुराधायामस्मिन् कर्मण्यस्यां देवहूत्या

14 अग्निपुराण 56.23.24 15 महाभारत वन पर्व, 134-31 16 महाभारत, द्रोणपर्व, 92.44

17. भागवत, 6.4 18 . तैत्तिरीय उपनिषद्, तृतीय भृगुवल्ली, प्रथम अनुवाक् - भृगुर्वै वारुणिः। वरुणं पितरमुपससार।

जलदेवता वरुण

पं. मार्कण्डेय शारदेय*

सृष्टि के आदि में उत्पन्न जल 'आदि कारण' के रूप में सनातन परम्परा में है। ऋग्वेद में 'राजा' के रूप में बहुचर्चित वरुण को इसका अधिपति बनाया गया। ऐतरेय ब्राह्मण के हरिश्चन्द्रोपाख्यान में वरुण पुत्र देनेवाले हैं, तो कुपित होने पर उदर में प्रविष्ट होकर जलोदर रोग उत्पन्न करने वाले भी हैं। वे प्राणियों को न्याय देने वाले, अपराधियों को 'पाश' में बाँधनेवाले तथा सभी पापों से मुक्त करनेवाले माने गये हैं। उनके हाथों में एक ऐसी दिव्यज्योति है, जिससे सम्पूर्ण संसार चल रहा है। ऐसे सर्वशक्तिशाली देवता को जल का अधिपति माना गया है। यहाँ इसी वरुण देव पर विस्तृत विवेचन किया गया है।

हमारे यहाँ सब कुछ देवमय है। इसलिए जड़-चेतन में भी हम देवदर्शन करते हैं, पड़े-पौधों तक का पूजन करते हैं। हमारी श्रद्धा से परे कुछ भी नहीं। यही हमारी उदारता, उदात्त मानसिकता व भारतीयता है।

यास्क देवता का लक्षण बताते कहते हैं- **देवो दानाद्वा द्योतनाद्वा दीपनाद्वा।**[1] अर्थात्, जो हमें विभिन्न काम्य वस्तुएँ प्रदान करते हैं, स्वयं प्रकाशित होते हैं तथा दूसरों को भी प्रकाशित करते हैं, वे देवता हैं।इन तीन लक्षणों में भी प्रथम की प्राथमिकता से हमारी विशेष धारणा है कि देवता देता है- **देवो दानात्**। यानी; जो-जो हमारे उपकारी हैं, वे-वे देवता हैं या उनमें देवता का वास है। इसे यदि परिभाषा मान लें तो देवताओं की संख्या अगणित होगी न! उनका गोचरत्व मूर्तिमत्ता तो अगोचरत्व दिव्यता है न! कारण कि ये मूर्तिमान, अमूर्त, उभयात्मक एवं कर्मरूप में भी माने गए हैं। ऐसे में इनकी व्याप्ति सर्वत्र है। स्वयं सृष्टि भी तो हमारे यहाँ देवी ही हैं! फिर, पाँचों तत्त्वों में जल देवत्व से अलग कैसे हो सकता है?

एकोऽहम् एवं **एकोऽहं बहु स्याम**:- हम दोनों को मानने वाले हैं। इसलिए एकेश्वरवाद दूर नहीं, परन्तु बहुदेववाद भी एकत्व में ही समाहित है। इस कारण अनगिनत देवताओं के उपासक हम परम तत्त्व के ही आराधक हैं। **एकं सद्** को मानते ही हैं **विप्रा बहुधा वदन्ति**[2] को भी मानते हैं। पुनश्च, ऋग्वेद में ही आया है-

य एक इत् तमुतुष्टहि कृष्टीनां विचर्षणि:। पतिर्यज्ञे वृषक्रतु:॥[3]

(वह परमात्मा एक होकर भी विद्वानों द्वारा अनेक नामों से किया जाता है। वह धर्मरूपी यज्ञों का स्वामी हुआ॥

इसी कारण एकत्व में अनेकत्व और अनेकत्व में एकत्व न तो दृष्टिभ्रम है और न दिग्भ्रम ही।निरुक्तकार भी मानते हैं कि जितने देवता हैं, वे एक ही परमेश्वर की विशेष शक्ति के प्रतीक हैं-

1. निरुक्त-7.15 2 . ऋग्वेद-1.164.46 3. ऋग्वेद, 6. 45. 16

* सनातन ज्योतिष, पाटलिग्राम एपार्टमेंट, शहीद भगत सिंह पथ, बजरंगपुरी, गुलजारबाग, पटना-800007 मो. 8709896614, Mail : markandeyshardey@gmail.com

वरुण देवता का यह चित्र वर्तमान में लॉस एँजल्स कंट्री म्यूजियम ऑफ आर्ट में संरक्षित है। राजस्थान के बूंदी क्षेत्र में अज्ञात कलाकार के द्वारा इसे 1675-1700 ई. के बीच बनाया गया था। इसे फेलिक्स एण्ड हेलेन जुडा फाउण्डेशन को उपहार में दिया गया।

स्रोत : साभार, विकीपीडिया।

महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति॥[4]

खैर; हमारे कई देवता हैं, कई उनकी कोटियाँ भी हैं। उन्हीं में एक श्रेणी है, जिसमें तैंतीस देवताओं का उल्लेख है- 11 रुद्र, 12 आदित्य, 08 वसु, 01 द्यौ और 01 पृथ्वी। इन्हीं के सूक्ष्म-स्थूल रूपों से विश्व की व्याप्ति है, जगत् की जागृति है।

विष्णुपुराण के अनुसार बारह आदित्यों के नाम हैं-

विष्णु, इन्द्र, अर्यमा, धाता, त्वष्टा, पूषा, विवस्वान्, सविता, मैत्र, वरुण, अंशु और भग।

मत्स्यपुराण का भी मत है–

इन्द्रो विष्णुः भगो त्वष्टा वरुणो ह्यर्यमा रविः।
पूषा मित्रश्च धनदो धाता पर्यन्य एव च॥[5]

इस आदित्यवर्ग में **वरुण** भी हैं, जो जल एवं जलजन्तुओं के देवता माने गए हैं। यों तो आदित्य के रूप में सूर्य की ही मुख्य ख्याति है, पर यह भी आदित्य हैं, क्योंकि यह भी महर्षि कश्यप- अदिति से उत्पन्न माने गए हैं।

वरुण शब्द **वृ** धातु एवं उणादिगणीय **उनन्** प्रत्यय के योग से बना है। यह दस दिक्पालों में पश्चिम दिशा के स्वामी एवं जल के अधिष्ठाता देवता हैं। इस कारण पञ्चतत्त्वों में जल के प्रतीक हैं, जलाधिनाथ हैं। इनके नगर का नाम शुद्धवती है-

पञ्चमे ह्युत्तरपुटे नाम्ना शुद्धवती पुरी।
उदकाधिपतेः ख्याता वरुणस्य महात्मनः॥[6]

इनका आयुध पाश है, इसलिए यह पाशी भी कहलाते हैं। इनकी पत्नी का नाम चर्षिणी व चर्षणी है। इनके पुत्र के रूप में महर्षि भृगु ने पुनर्जन्म ग्रहण किया। इन्हीं के एक अन्य पुत्र वाल्मीकि भी बताए गए हैं-

चर्षणी वरुणस्यासीत् यस्यां जातो भृगुः पुनः॥
वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकात् अभवत् किल॥[7]

मित्र और वरुण दोनों अलग-अलग हैं। परन्तु वेदों में भी मित्रावरुण व मैत्रावरुण के रूप मे इनकी एकात्मकता आई है। यहाँ **भागवत** में बताया गया है कि कुम्भस्थ मित्रतेज से अगस्त्य तथा वरुणतेज से वसिष्ठ की उत्पत्ति हुई- **अगस्त्यश्च**

4 . निरुक्त-7.4

5. **मत्स्यपुराण** (171.56)

6 (वराहपुराण- 76.12)

7 (भागवत-6.18.4-5)

वसिष्ठश्च मित्रावरुणयोः ऋषी।[8] **वराहपुराण** में वेत्रवती नदी नारीरूप में प्रकट हो वरुणांश राजा सिन्धुद्वीप से स्वयं को वरुणपत्नी बताती है-

अहं जलपतेः पत्नी वरुणस्य महात्मनः।
नाम्ना वेत्रवती पुण्या त्वाम् इच्छन्त्यहमागता॥[9]

सम्भव है, नदियों के आश्रय समुद्र इनकी व्यापकता है, निवास है, इसलिए सागर को वरुणालय कहा जाता है।

वराह-पुराण के अनुसार सृष्ट्यारम्भ के समय सृष्टिकामी ब्रह्माजी के कानों से दस कन्याएँ उत्पन्न हुईं- **प्रादुर्बभूवुः श्रोत्रेभ्यः दश कन्या महाप्रभाः**[10], जो दसों दिशाएँ थीं। इसके बाद उन्होंने दिशाओं के पतियों की सृष्टि की- **ब्रह्मापि ससृजे तूर्णं लोकपालान् महाबलान्।**[11] पश्चात्, दसों कन्याओं का विवाह इन्द्रादि दस लोकपालों से करवाया-

सृष्ट्वा तु लोकपालान् तु ताः कन्याः पुनराह्वयत्।
विवाहं कारयामास ब्रह्मा लोकपितामहः॥[12]

इस तरह **वरुण** प्रतीची (पश्चिम) दिशा के स्वामी हुए।

वरुण देवता, राजरानी मन्दिर, (11वीं शती), भुवनेश्वर, उड़ीसा।
चित्र एवं सूचना : साभार, विकीपीडिया

अब सवाल है कि **वरुण** ब्रह्माजी के पुत्र या कश्यप-अदिति के? तो; यह ध्यातव्य है कि हमारे यहाँ नित्य-अनित्य रूप में सृष्टि के सभी अंग विभक्त हैं। नित्यरूप में जन्म-मृत्यु व स्थूल सृष्टि से परे हैं तो अनित्यरूप में लीलामय। हम मनुष्य भी आत्मिक रूप से अमर हैं, पर शारीरिक रूप से नश्वर।देवों की दिव्यता में देवत्व है। **वरुण** भी तात्त्विक रूप में नित्य हैं तो दिव्य रूप में सृष्टिकर्ता से सृष्ट। पुनः; दिव्यादिव्य रूप में आदित्यवर्गीय हैं। इसीलिए तो **गीता** में श्रीकृष्ण ने इन्हें आत्म-स्वरूप बताते कहा है- **वरुणो यादसामहम्।**[13] अब पुनः **वराहपुराण** पर दृष्टिपात करें तो एक प्रसंग में तापस रूप वरुणदेव अगस्त्य ऋषि को अपना परिचय देते कहते हैं-

अहं नारायणो देवः जलरूपी सनातनः।
येन व्याप्तमिदं विश्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥
या सा त्वाप्याकृतिः तस्य देवस्य परमेष्ठिनः।
सोऽहं वरुण इत्युक्तः स्वयं नारायणः परः॥[14]

अर्थात्; मैं ही जलरूप में शाश्वत नारायण हूँ, जिनसे यह समस्त स्थावर-जंगम संसार व्याप्त है। जो मेरी जलाकृति है, वह उसी परमेष्ठी का ही स्वरूप है। और; मैं वही साक्षात् द्वितीय नारायण वरुण हूँ।

अब यहाँ आए नारायण शब्द विष्णुपुराणीय दृष्टि से देखा जाए-

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः॥[15]

8 भागवत, (6.18.5)
9 **वराहपुराण** (28.9)
10 वराहपुराण, (29.3)
11 वराहपुराण, (29.10)
12 वराह, (29.11)।
13 गीता, (11.29)
14 वाराहपुराण, (36-37)

जल ही नार है और नार ही अयन है। ऐसे में जलनिवासी विष्णु का संकेत है तो वरुणदेव का भी। एक का क्षीरसागर है तो दूसरे का समस्त जलाशय। क्षीरसागर हो या एकार्णव वह **वरुण** का ही आलय या एक रूप है। इस कारण यहाँ दोनों में **कहियत भिन्न न भिन्न** है। इसीलिए उक्त कथन में आया **स्वयं नारायणः परः** भी समीचीन है। पुनः; गीतोक्त श्रीकृष्ण-कथन एवं वराह पुराणोक्त वरुण-कथन दोनों के मिलान से भी स्पष्ट है कि दोनों दो होकर भी एक ही हैं।

यह भी सम्भव है कि वैदिककाल के सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ तथा समस्त जगत के नियामक वरुणदेव का स्थान विष्णु ने ले लिया हो और इनका क्षेत्र जल तक सीमित कर दिया गया हो। कारण कि प्रलय के बाद भी केवल जल ही जल था।अन्य तत्त्व उसी में विलीन थे। जब जल था तो उसके अधिष्ठाता थे न! उसे सर्वव्यापक विष्णु कह लें या नारायण जलशायी **वरुण** ही न हुए!

अमरकोश में **असुरा दैत्य-दैतेय-दनुजेन्द्रारि-दानवाः**[16] में असुर और दैत्य आदि समानार्थी बताए गए हैं। **त्रिकाण्डशेष** कोश[17] में **वरुण** को **दैत्यदेव** कहा गया है।क्या मतलब; जलनाथ दैत्य भी हैं और देवता भी? या दैत्यरूपी देवता हैं? लेकिन दैत्य, दनुज भी एक नहीं, भिन्न हैं। दैत्य दिति की तो दनुज दनु की सन्तानें हैं। इधर **वरुण** अदितिपुत्र हैं। हैं तो भाई ही; पर सौतेले हैं। फिर दैत्यदेव क्यों कहा गया? कहीं अमरकोशोक्त दैत्य-दानवों के लिए **पूर्वदेव** से सम्बद्ध तो नहीं! लेकिन नहीं; क्योंकि यह शब्द सुरद्विष का समानार्थी ही है। तब यह सम्भव है कि अधिक क्षमाशील माने जानेवाले इस देवता ने दैत्य-दानवों का कभी बचाव किया हो, अभयदान किया हो। इस कारण **दैत्यदेव** कहलाए हों- **देवो दानात्**।

एक बात और; पहले **असुर** शब्द शक्तिशाली होने, महाप्राण होने का द्योतक था, पर बाद में यह शब्द देवारियों तक सिमट गया और देवताओं के लिए सुर हो गया। इससे ऐसा लगता है कि जिन देवताओं के लिए पूर्व में प्रतिष्ठापरक **असुर** का प्रयोग आया है, उनमें **वरुण** भी हैं। इसी कारण **असुर** के अर्थ में दैत्य का ग्रहण करते हुए **दैत्यदेव** कहा गया हो। भला अदितिपुत्र दितिपुत्र कैसे हो सकते हैं? पुनश्च; विद्वानों के अनुसार, "वरुण की विशेषताओं से ही युक्त अवेस्ता का अहुर मज्दा नामक देवता, यूनान के देवता अउरेनोस् (Ouranos) के साथ इनका साम्य है, अतः ये भारोपीय देवता हैं"।[18]

वेदों में **वरुण** बड़े प्रभावशाली हैं। ऋग्वेद में इन्द्र और अग्नि के बाद इनका विशेष स्थान है। यह राजा हैं, सम्राट हैं।यह धृतव्रत; यानी नियमों का कठोरता पूर्वक पालन करने-कराने वाले हैं।यह कठोर हैं तो क्षमावान भी हैं। वरुणदेव की शासकीयता का साक्षात्कार इस ऋचा से किया जा सकता है-

कदा क्षत्रश्रियं नरमा वरुणं करामहे। मृळीकायोरुचक्षमम्॥[19]

अर्थात्; मैं शासकीय गुणों से सम्पन्न व योद्धाओं को जीतनेवाले, सबपर दृष्टि रखनेवाले व सबका नेतृत्व करनेवाले वरुणदेव को हम अपने सुख के लिए कब बुला पाएँगे; यानी वह कब आएँगे, जिससे हमें सुख मिलेगा?

अब एक दूसरी ऋचा के माध्यम से इनके शासनक्षेत्र पर दृष्टि डालें-

वेदा यो वीनां पदमन्तरिक्षेण पतताम्।वेद नाव समुद्रियः॥[20]

अर्थात्; वरुणदेव आकाश में उड़नेवाले पक्षियों के मार्ग को जानते हैं और समुद्र में चलती नावों के मार्ग को भी जानते हैं। वह हमें बन्धनमुक्त करें।

ऋग्वेद की ही एक और प्रभावपरक ऋचा द्रष्टव्य है, तदनुसार वरुण ने अन्तरिक्ष को वनों पर, सूर्य को स्वर्ग पर तथा सोम को पर्वतों पर फैला दिया-

15 विष्णुपुराण, (1.4.6) 16 **अमरकोष,** (1.1.12) 17 त्रिकाण्डशेष कोष, (1.1.74)
18 ऋग्वेद-संहिता, प्रो. उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि' (सम्पादक), भूमिका, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 81.
19 ऋग्वेद-1.25.5 20 ऋग्वेद-1.25.7

शक्ति वरुणानी के साथ वरुण देवता की 8वीं शती में कर्णाटक में निर्मित मूर्ति, सम्प्रति प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय, मुबई में प्रदर्शित है।

चित्र एवं सूचना : साभार, विकीपीडिया

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्सुवग्निं दिवि सूर्यमदधात् सोममद्रौ॥[21]

हमारे दैनिक जीवन में जल की क्या महत्ता है; इससे हम खूब परिचित हैं। इसके बिना हम प्राणियों का एक दिन भी चलनेवाला नहीं।यह पीने, नहाने, धोने से लेकर खेती-बारी में भी परम उपयोगी है। **वरुण** को स्फटिकप्रभ, अथवा हिम, कुन्द व चन्द्रमा (हिमकुन्देन्दु-सन्निभ) समान कहा गया है, जो शुद्ध जल का भी वाचक है।इसकी तीनों स्थितियाँ - द्रव, ठोस एवं वाष्प भी जलाधीश की व्याप्ति से परे नहीं। यही कारण है कि यह हमारी यज्ञीय व्यवस्था में कलश से लेकर समस्त जलाशयों में भी सम्पूज्य हैं।
पूजापद्धतियों में कलशस्थापन के बाद एक प्रार्थना अवश्य मिलती है-

नमो नमस्ते स्फटिक-प्रभाय सुश्वेतहाराय सुमंगलाय।
सुपाशहस्ताय झषासनाय जलाधिनाथाय नमो नमस्ते॥

अर्थात्; स्फटिक की कान्तिवाले, श्वेतहार धारण करनेवाले, मंगलदायक, हाथ में पाश लिये एवं मत्स्य पर आसीन जलपति वरुणजी को बार-बार प्रणाम है।

वस्तुतः; जलाराधन ही जलेशाराधन है। इस कारण जलाशयों का निर्माण हमारे पूर्तकर्मों के अन्तर्गत है। जलाशयों का निर्माण जितना पवित्र कर्म है, उससे कहीं अधिक उन्हें सुरक्षित रखना। इस सुरक्षा में स्वच्छता सर्वोपरि है। स्वच्छ जल हमारे स्वास्थ्य के लिए परमावश्यक तो है ही सृष्टि-संरक्षण के लिए भी अनिवार्य है। इसलिए पानी की बर्बादी रोकते हुए जल-संरक्षण के उपायों को उपयोग में लाना धर्मसम्मत, स्वास्थ्य-सम्मत, पर्यावरण-सम्मत के साथ-साथ जलदेव से वरप्राप्ति का सर्वोत्तम सत्कर्म है।

***

21 ऋग्वेद, (5.85.2

गंगाजल का वैज्ञानिक विश्लेषण
(बिहार के सन्दर्भ में समस्याएँ एवं समाधान)

श्री गजानन मिश्र*

गंगा नदी भारतीय संस्कृति की प्रवाहिका रही है। मानवीय भूलों के कारण गंगाजल की शुद्धता में ह्रास हुआ है, लेकिन इस जल की मूल रासायनिक तथा विशिष्ट परमाण्विक संरचना के कारण आज भी यह जल विशिष्ट है। इस विशिष्ट संरचना पर वैज्ञानिक दृष्टि से प्रकाश देते हुए लेखक ने बिहार में गंगा की समस्याओं तथा समाधान का भी मार्ग प्रस्तुत किया है। लेखक स्वयं बिहार सरकार के जल संसाधन विभाग में अतिरिक्त सचिव के पद से अवकाशप्राप्त है। इनके द्वारा किया गया गम्भीर शोध यहाँ प्रस्तुत है।

अपनी मातृभूमि भारत में हम जिस पृथ्वी पर रहते हैं, उस पृथ्वी को हम माता मानते हैं। इसी माता पृथ्वी से हम अन्न, पानी, औषधि, खनिज प्राप्त करते हैं इस माता पृथ्वी के निर्माण में हमारी मातामही नदियों का योगदान बहुत है। अतः नदियाँ भी हमारी माता हैं। नदियों में सर्वश्रेष्ठ है गंगा।

सनातन परम्परा में गंगा का दिव्य रूप

मार्कण्डेय पुराण में उल्लेख है कि गंगा का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ होता है- गां पृथ्वीं गच्छतीति गंगा अर्थात् जो स्वर्ग से सीधे पृथ्वी पर आये वह गंगा है। इसकी एक दूसरी व्युत्पत्ति है- गं अव्ययं (स्वर्ग) गमयतीति गंगा अर्थात् जो स्वर्ग की ओर ले जाय वह गंगा है। स्पष्ट है कि गंगा सीधे स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरती है और पृथ्वी से जीवों को स्वर्ग भी ले जाती है।[1] **कालिदास** ने कुमारसम्भव में सही ही लिखा है कि तापत्रयविनाशिनी गंगा स्वर्ग और पृथ्वी की अविच्छिन्न सोपान पंक्ति है। **'ऐतरेय ब्राह्मण'** के अनुसार मौलिक जल के चार भेद हैं- अम्भ, मरीचि, भर और आप। इसमें अम्भ शुद्ध मौलिक तत्त्व है, जो सम्पूर्ण द्युलोक में परिव्याप्त है। इसी 'अम्भ' के पारावार में हमारा सौरमंडल एवं सूर्य है। सूर्य की गर्मी से बाष्पीकृत होकर जो अम्भांश अन्तरिक्ष में फैला है वह मरीचि है। जो जल मेघों के द्वारा बनता है और पृथ्वी पर बरसकर नदियों, झीलों और समुद्रों में जाता है वह 'भर' है। यही भर हाइड्रोजन और ऑक्सीजन का यौगिक है। यही भर जब पृथ्वी के भीतर से प्राप्त होता है तब आप कहलाता है। **हवलदार त्रिपाठी**[2] लिखते हैं कि अनन्त अन्तरिक्ष में अनेक सूर्य हैं, जिनकी किरणें आपस में टकराती हैं जिसके फलस्वरूप अन्तारिक्ष में अम्भ तत्त्व घनीभूत होकर जो स्रावित होता है, वह गंगा-तत्त्व है। इसलिए महाभारत में गंगाजल के लिए **"गंगाम्भ"** शब्द का प्रयोग किया गया है। कालिदास, पंडितराज जगन्नाथ, महाकवि विद्यापति आदि गंगा की विरुदावली यूं ही नहीं गाते है। स्पष्टतः शुद्ध मौलिक जलतत्त्व अम्भ का घनीभूत रूप गंगा है। यह गंगा हिमालय पर्वत के माध्यम से भारत में बहती है।

ऋग्वेद के नदीसूक्त में जिन मुख्य नदियों का स्मरण किया गया है, उनमें प्रथमतः गंगा

1. मार्कण्डेय-पुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, पृ 138
2. हवलदार त्रिपाठी, बिहार की नदियाँ, राष्ट्रभाषा परिषद, बिहार, पटना, 1972

* भारतीय प्रशासनिक सेवा (अ.प्र.), अतिरिक्त सचिव जल संसाधन विभाग बिहार से सेवानिवृत्त, लालबाग, दरभंगा।

का आवाहन है। यह भारत के दर्शन में गंगा की प्रधानता एवं महत्ता को प्रमाणित करती है। नारदीय-पुराण में गंगा-स्थल को तीन भागों में विभक्त किया है, जो गंगा-गर्भ, गंगा-तीर एवं गंगा-क्षेत्र कहलाता है। गंगा-गर्भ वह हुआ, जहाँ तक भाद्र कृष्ण पक्ष के चतुर्दशी तक गंगा का जल पहुँचता है अर्थात वर्षा काल में गंगा की बाढ़ जहाँ तक चली जाती है उसे **गंगा-गर्भ** कहते हैं। इस गंगा-गर्भ की सीमा से 150 (225 फीट) हाथ की दूरी तक के भूभाग को **गंगा-तट** कहा जाता है; गंगा-तट से दो कोस की दूरी तक के भूमिभाग को **गंगा-क्षेत्र** माना जाता है। उक्त नारदीय पुराण गंगा-गर्भ एवं गंगा-तीर में मानवीय आवास को सर्वथा मना करता है। मगर गंगा-क्षेत्र में आवास बनाया जा सकता है।

गंगाजल की नित्य शुद्धता

नेशनल एनवायर्नमेंटल इंजिनीअरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट(नीरी)[3] ने अपने शोध में स्थापित किया है कि गंगा-जल में स्वयं शुद्ध एवं सुरक्षित करने की क्षमता अन्तर्निहित है। अपने जल को अशुद्ध हो जाने पर इसमें घुली हुई अशुद्धियों को ख़त्म कर स्वयं को शुद्ध करने एवं भविष्य के लिए स्वयं को सुरक्षित रखने की क्षमता इस धरती पर गंगा नदी में सर्वाधिक है। नीरी की उक्त जाँच रिपोर्ट में उल्लेख है कि गंगा का सेडीमेंट अन्य नदियों की तुलना में अधिक रेडियोएक्टिव है। इसके सेडीमेंट में कॉपर एवं क्रोमियम पाए जाते हैं तथा इसके जल में बैक्टीरियानाशक गुण हैं जिसके कारण इसके जल से रोगकारी कोलीफोर्म घटता एवं नष्ट होता है। यह रिसर्च कहती है कि गंगा इकोसिस्टम एक ऐसा उत्तम जैविक व्यवस्था है कि इसके जल में स्वयं शुद्धीकरण की क्षमता अन्य किसी जल से अधिक हो जाती है। इसी तथ्य को सेंट्रल प्रदूषण नियन्त्रण बोर्ड[4] ने भी सत्यापित किया है। गंगा की यह विशेषता भारतीय वाङ्मय के 'गंगाम्भ' की वैज्ञानिकता का परिचायक है।

नीरी का निष्कर्ष है कि इसके जल में कोलिफेजेज बड़ी मात्रा में विकसित होता है, जो इसमे घुले हुए कोलीफोर्म एवं अन्य बैक्टीरिया को तत्क्षण ख़त्म कर देता है। यह कार्य तब भी होता है, जब इसका जल स्थिर रहता है। यह कार्य सदैव जारी रहता है। अन्य नदियों में कोलिफजेज की ऐसी सक्रियता नहीं है, विशेषकर तब तो एकदम ही नहीं, जब जल स्थिर रहता है अर्थात् वह जल किसी पात्र में रखा रहता है। इसलिए गंगाजल की पात्र में वर्षों तक रखे जाने पर भी सुरक्षित रहता है।

गंगा एवं गंगाजल के बारे में रूडकी विश्वविद्यालय के पर्यावरणवादी अभियंता **डी. एस. भार्गव** का कहना है कि अन्य नदियों से भिन्न गंगाजल लम्बे अवधि तक रखे रहने पर भी खराब नहीं होता है। वह यह भी कहते हैं कि पृथ्वी पर कोई भी अन्य नदी गंगा की भाँति अपनी गंदगी को इतनी तेजी और सक्रियता से शुद्ध नहीं कर सकती है। 1982-1984 के मध्य गंगा किनारे अपने रिसर्च में उन्होंने पाया कि इसमे आने वाले कार्बोनिक अशुद्धियों की बड़ी मात्रा भी साफ़ हो जाती है। ऐसे कार्बनिक प्रदूषणकारी की मात्रा का मापदण्ड है- बायोलॉजिकल ऑक्सीजन डिमांड (बी.ओ.डी.) अर्थात् पानी में घुले ऑक्सीजन की मात्रा जो किसी प्रदूषणकारी तत्त्व को ख़त्म करने के लिए उन जीवाणु के लिए आवश्यक है, जो उक्त प्रदूषणकारी तत्त्वों को नष्ट करती है। पानी में घुले कार्बनिक प्रदूषणकारी तत्त्व एवं एवं इससे उत्पन्न पेथोजेन्स जितने अधिक होंगे, उतने ही अधिक बी ओ डी होगी। श्री भार्गव ने पाया कि कानपुर में जहाँ गंगा में प्रदूषणकारी तत्त्व सर्वाधिक है, वहाँ बी ओ डी 27 मिलीग्राम प्रति लीटर था; इससे 7 किलोमीटर नीचे यह 4/5 मिलीग्राम प्रति लीटर मात्र था। श्री भार्गव के अनुसार गंगा में अपने कार्बनिक अशुद्धियों को खत्म करने की क्षमता अन्य नदियों के तुलना में 15 से 25 गुना अधिक है। इनका यह भी कहना है कि गंगा में ऐसे अनजाने माइक्रोब्स हैं, जिसका रासायनिक स्राव कार्बनिक तत्त्व को निष्प्रभ कर देती है। उनका यह भी कहना है कि गंगा में प्रदूषणकारी पदार्थ से जिस स्थान पर रोगकारी बैक्टीरिया उत्पन्न होती है, वह पदार्थ 7 से 10 किलोमीटर नीचे आते आते लगभग 90% की मात्रा तक ख़त्म हो जाती है।

3. डी मुखर्जी ई नेशनल एनवायर्नमेंटल इंजिनीअरिंग रिसर्च इंस्टीट्यूट(नीरी) प्रकाशित 1913 इंटरनेट
4. सेंट्रल पलूशन कंट्रोल बोर्ड रिपोर्ट 1985 इनटर्नेट

गंगा का यह जल-मित्र माइक्रोब्स इसकी बी ओ डी काफी घटा देती है। यह माइक्रोब्स हवा से ऑक्सीजन लेकर जल में घोल देती है। इस प्रकार गंगा जल में ऑक्सीजन की अधिकाधिक मात्रा हमेशा बनी रहती है। इसमें ऑक्सीजन की अधिक मात्रा इसकी विलक्षण गुण का आधार है। श्री भार्गव कहते हैं कि ऑक्सीजन प्राप्त करने की विलक्षण क्षमता के विन्दु पर गंगा अन्य नदियों की तुलना में अतुल्य है। उनके अनुसार गंगा की टर्बउलेंट मोसन और इसका विस्तृत जल क्षेत्र इसके द्वारा अधिक ऑक्सीजन प्राप्त करने के पीछे का कारण है। गंगा जल में ऑक्सीजन संरक्षित रहने की क्षमता के ही कारण यह किसी बर्तन में लम्बे समय तक रहने पर भी सड़ता नहीं है। ज्ञातव्य हो कि भारत में गंगा जल को ताम्बे के बर्तन में वर्षों वर्षों तक रखने औए उसका उपयोग पूजा पाठ में तथा पूजा भोग बनाने में करने की परंपरा प्राचीन काल से ही है। किसी नदी का पानी तब सड़ता है, जब ऑक्सीजन के अभाव में उसमें अनएरोबिक बैक्टीरिया पनपती है, जिससे मीथेन उत्पन्न होता है, जो दुर्गन्ध पैदा करती है। गंगा में ऑक्सीजन का अभाव नहीं होने के कारण यह नहीं सड़ता है।

1896 ई में अंग्रेज़ फिजिसियन **इ हन्बरी हनकिन**[5] ने फ्रांसिसी जर्नल Annales de institute Pasteur में रिपोर्ट कराया था कि गंगाजल में कोलेरा माइक्रोब्स तीन घंटे में ख़त्म हो जाता है, जबकि वह डिस्टिल्ड वाटर में 48 घंटे बाद भी जीवित रह जाता है। **हनकिन** ने अपने जाँच में नमूने गंगा में वहाँ लिया था जहाँ कोलेरा से मृत मानव शरीर पड़ा था। वह यह भी लिखते हैं कि गंगा जल को खौलाने पर इसकी विलक्षणता ख़त्म हो जाती है। इससे उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि इसकी शुद्धीकरण की क्षमता के पीछे कोई बाष्पशील (volatile) पदार्थ है।

इसी तरह फ्रांसिसी फिजिसियन **डी हेरील्ल** ने प्रतिवेदित किया कि गंगाजल में कोलेरा या डिसेंट्री से मृत मानव शरीर के ठीक नीचे कोई पेथोजेंस जीवाणु नहीं था, जबकि उसके वहाँ बड़ी संख्या में होने की अपेक्षा की जाती है। ऐसे ही अंग्रेज़ फिजिसियन **सी इ नेल्सन** ने पाया कि हुगली जहाँ बहुत अधिक गंदगी है, में गंगा का जल इंग्लैंड जाने के क्रम में महीनों तक जहाज पर सुरक्षित रहता है।

लेकिन श्री भार्गव कहते हैं कि उपर्युक्त शोधकर्ताओं में कोई भी गंगा के विलक्षण गुण के आधारभूत कारण की व्याख्या नहीं कर सके। वह स्वयं भी इसका कारण नहीं स्पष्ट करते हैं।

गंगाजल की शुद्धता का वैज्ञानिक कारण

गंगा की शुद्धता का कारण **बैक्टेरियोफाग**[6] को भी माना जाता है। बैक्टेरियोफाग एक वाइरस है, जो बैक्टीरिया को ख़त्म करता है। इसके कोशिका के न्युक्लिअस में डी एन ए या आर एन ए हो सकता है, यह फाग किसी बैक्टीरिया को पकड़कर उसमें अपना जेनेटिक पदार्थ डाल देता है; उक्त जेनेटिक पदार्थ प्रजनन करके अपनी संख्या इतनी बढ़ा लेती है कि उस दवाब से बैक्टीरिया फट जाता है; इस तरह गंगाजल में उपस्थित रोगकारी बैक्टीरिया नष्ट होता है। बाहर आने पर उक्त फेज़ेज़ पुनः नए बैक्टीरिया की तलाश करता है। बाहर रहने पर यह प्रजनन नहीं कर सकता है। प्रजनन करने के लिए इसे कोई रोगकारी बैक्टीरिया के रूप में एक होस्ट की अनिवार्यता है। इस प्रकार, यह बैक्टेरियफाग वातावरण में सुषुप्तावस्था में रहते हुए रोगकारी बैक्टीरिया की प्रतीक्षा करता रहता है। स्पष्ट है कि बैक्टेरियफाग की संख्या इस तरह अनियन्त्रत रूप से बढ़ती जाती है तथा इस क्रम में रोगकारी बैक्टीरिया भी ख़त्म होते जाते हैं। यह माना जाता है कि गर्म करने पर गंगा जल में घुले जादुई बक्टेरियोफाग तथा कोलोवाईड्स नष्ट हो जाता है। गंगाजल के बक्टेरियोफाग जीवित मनुष्य के लिए हानिकारक नहीं है। जो फाग कोलेरा बैक्टीरिया को ख़त्म करता है वह सिर्फ कोलेरा बैक्टीरिया को ही ख़त्म कर सकता है। अर्थात् डिसेंट्री बैक्टीरिया को ख़त्म करनेवाला फाग पृथक् होगा जो सिर्फ डिसेंट्री बैक्टीरिया को ही ख़त्म कर सकता है। किसी बैक्टीरिया-

5. अर्नेस्ट हन्बरी हनकिन ने फ्रांसिसी जर्नल Annales de institute Pasteur 1890 विकिपीडिया इंटरनेट

"एंटीबायोटिक्स एवं आधुनिक फर्मास्यूटिकल उद्योग के शोषणकारी व्यापार ने बैक्टेरियोफाग के लिए कोई रिसर्च एवं विकास नहीं होने दिया है। आज अब इस बात की नितान्त आवश्यकता है कि बैक्टेरियोफाग पर गहन रूप में शोध एवं विकास किया जाय। कोई फर्मास्यूटिकल कम्पनी तो यह करेगी नहीं, इसलिए इसके लिए सरकार से अपेक्षा है। "

होस्ट से बाहर रहने पर फाग मृतवत् रहता है, इसलिए जीवित मनुष्य के लिए यह हानिकारक नहीं है। यहाँ यह भी स्पष्ट होता है कि बैक्टेरियोफाग के लिए मानव शरीर अथवा कार्बनिक प्रदूषक तत्त्व उत्प्रेरक का काम करता है। जितना अधिक रोगकारी बैक्टीरिया अथवा कार्बनिक प्रदूषक तत्त्व होगा, उतना ही अधिक बैक्टेरियोफाग की मात्रा होगी। सम्भवतः यह एक कारण है कि कुम्भस्नान के समय में करोड़ों के स्नानार्थियों के होने के वाबजूद कोई महामारी की घटना नहीं होती है। बैक्टेरियोफाग की अधिक मात्रा मात्रा से गंगाजल अधिक शुद्ध हो जाता है।

गंगाजल में बैक्टीरिया नाश करने का गुण

यहाँ यह बताना प्रासंगिक होगा कि रोगकारी बैक्टीरिया को आज एंटीबायोटिक के द्वारा ख़त्म किया जाता है लेकिन इस क्रम में शरीर में मौजूद मित्र बैक्टीरिया भी ख़त्म हो जाता है, जिससे शरीर पर बहुत ख़राब दुष्प्रभाव पड़ता है। दूसरी तरफ बैक्टेरियोफाग शरीर के रोगकारी बैक्टीरिया को ख़त्म करने के क्रम में शरीर में मौजूद मित्र बैक्टीरिया या प्राकृतिक जीवाणुओं को दुष्प्रभावित नहीं करता है। एंटीबायोटिक्स एवं आधुनिक फर्मास्यूटिकल उद्योग के शोषणकारी व्यापार ने बैक्टेरियोफाग के लिए कोई रिसर्च एवं विकास नहीं होने दिया है। आज अब इस बात की नितांत आवश्यकता है कि बैक्टेरियोफाग पर गहन रूप में शोध एवं विकास किया जाय। कोई फर्मास्यूटिकल कम्पनी तो यह करेगी नहीं, इसलिए इसके लिए सरकार से अपेक्षा है। ऐसी आशंका जताई जाती है कि गंगा पर बने हुए बाँधों और इसमे घुल रहे रासायनिक अवशिष्ट ने इसके बैक्टेरियोफागों को सम्भवतः निष्प्रभ/क्षीण कर दिया है।

एक धारणा यह भी है कि गंगाजल में नैनो आकार के अति सूक्ष्म **कोलोवाईडस** पाए जाते हैं। ये कोलोवाईडस समुद्र की तलहटी में थे; जब हिमालय पर्वत कॉन्टिनेंटल प्लेट्स के आपसी टकराव के फलस्वरूप समुद्र से निकल कर ऊपर आ गया तब उक्त कोलोवाईडस भी हिमालय पर ऊपर आ गया। यह नैनो आकार के अति सूक्ष्म कोलोवाईडस में विद्युत् आवेश होता है, जिससे यह मानव शरीर की रक्षा फ्री रेडिकल्स से करते हुए शरीर को स्वस्थ बनाता है। इसीलिए गंगाजल को "लिविंग वाटर" कहा जाता है।

गंगाजल में खनिज लवणों का उपस्थिति

गंगाजल में 83 प्रकार के खनिज पाए जाते हैं, जिसकी सही मात्रा में रहने पर मानव शरीर में इसके कोशिकाओं के बीच सम्यक् तरंगित अवस्था बनती है, जो शरीर के स्वस्थ्य का मूल आधार है। इस प्रकार गंगाजल कोशिका के स्तर पर प्रभाव उत्पन्न करती है। शरीर में कोशिका के मेटाबोलिक कार्य करने के क्रम में फ्री रेडिकल्स पैदा होता है; यह फ्री रेडिकल्स एक elektron को विमुक्त करता है, जो कोशिका के nuclei और डी एन ए को क्षतिग्रस्त करता है। इससे शरीर में बीमारी उत्पन्न होती है। elektron की क्षति से कोई कोशिका फ्री रेडिकल्स बन जाती है, ऐसी कोशिका अन्य कोशिकाओं को क्षतिग्रस्त

6. इंस्टिट्यूट ऑफ माइक्रोबीअल टेक्नॉलजी (imtech) बक्टेरियोफाग रिपोर्ट दी इंडियन एक्स्प्रेस सितंबर 2016

करती जाती है और कोशिकाओं के क्षतिग्रस्त होने का अर्थ है, बीमारी उत्पन्न होना। ऐसी कोशिका को ठीक करने हेतु यह आवश्यक है कि एंटी ओक्सिडेंट के द्वारा फ्री रेडिकल्स को निष्प्रभावित किया जाय। शरीर की बायो-केमिकल क्रियाकलाप में खनिजों की भूमिका एवं कोशिकाओं के सम्यक् तरंगित अवस्था को उत्पन्न करने में गंगाजल का प्रभाव आधुनिक मेडिकल विज्ञान के द्वारा शोध का विषय है। यह **चन्द्र शेखर नौटियाल** के शोध मे है।[7]

प्रसिद्ध ब्लॉगर और विद्वान् अजीत वदकायल [8] का कहना है कि गंगाजल बहुत क्षारीय होता है। इसके अणु में एक अतिरिक्त इलेक्ट्रौन होता है, जो शरीर में मौजूद हानिकारक फ्री रेडिकल्स को निष्प्रभावित कर देता है। फ्री रेडिकल्स डी एन ए को क्षति पहुँचाती है, बीमारी पैदा करती है एवं उम्र बढ़ने के साथ शरीर को कमजोर करती जाती है। उम्र बढ़ने के साथ शरीर के कोशिकाओं की जल शोषित करने की क्षमता घटती जाती है। हमारा शरीर तो 70 % पानी है इसलिए शरीर में उम्र के साथ पानी की मात्रा घटने के कारण एजिंग एवं बीमारी होने लगती है। ऐसी स्थिति में शरीर सिर्फ ionized जल ही स्वीकार करती है। Ionization से जल में उपस्थित खनिज कोलोवाईडस में परिणत हो जाते हैं जो कोशिका द्वारा शोषित हो सकता है। ionized जल में धनात्मक आवेश होता है; अन्य जल ऋणात्मक होते हैं। धनात्मक आवेश वाला जल anti oxidant होता है। anti oxidant जल शरीर के फ्री रेडिकल्स को नियन्त्रित करता है। यह anti inflammatory होता है। ताम्बे के लोटा को इमली से रगड़ कर साफ करने और इसमें रात भर जल रखने से ताम्र कोलोवाईडस उस जल में आ जाता है। ऐसे जल में रोग जीवाणु यथा इ-कोलाई, अलगी, वायरस आदि नष्ट हो जाते हैं।

गंगाजल की पारमाण्विक संरचना

जल का परमाणु की रासायनिक संरचना अंग्रेजी के V अक्षर की तरह है, जिसमे 105 डिग्री का कोण बनता है। इस कोण के आधार में एक ऑक्सीजन तथा ऊपर में दो हाइड्रोजन अणु रहता है। इन तीनों अणुओं के बीच ऋणात्मक आवेश इलेक्ट्रान का आदान प्रदान होता है। इस आदान-प्रदान से इस जल परमाणु में covalent bond के रूप में point field का निर्माण होता है। सामान्यतः जल का सर्फेस टेंसन 75 dyne/cm^2 होता हो। लेकिन यह माना जाता है कि गंगाजल में यह घटकर 65 हो जाता है जिसके कारण इसके जलीय परमाणु का कोण 105 डिग्री से बढ़कर 120 डिग्री हो जाता है। ऐसा जल मानव शरीर के लिए अधिक लाभकारी है। शरीर में कोशिकाओं से हाइड्रेशन और permeation के लिए जल का पृष्ठ तनाव कम होना चाहिए। जल का पृष्ठ तनाव अधिक होने की स्थति में कोशिका अपना हानिकारक उच्छिष्ट भी अपने ही जल में घोल देती है, बाहर नहीं निकाल पाती है। गंगा जल की क्षारीयता से शरीर के कोशिकाओं के जल के पृष्ठ तनाव में कमी आने का तथ्य प्रतिवेदित है। शरीर के डी एन ए से निसृत scalar wave जल के पृष्ठ तनाव को घटाती है एवं जल को क्षारीय बनाती है। मन्त्र का प्रभाव डी एन ए से scalar wave के निःसृति पर सकारात्मक असर डालती है। यही कारण है कि ॐ, गायत्री, राम-जैसे मन्त्रों से शरीर के डी एन ए पर सकारात्मक प्रभाव की बात वैज्ञानिक लगती है।

हमारे शरीर में 75 % पानी है। ब्रेन में 83%, रक्त में 92%, किडनी में 82%, लीवर मेन 69%, मसल्स में 75% और हड्डी में 28% जल है। पानी 0 डिग्री पर जम जाता है। लेकिन केश से भी पतले रक्त नलिकाओं में वातावरण का तापमान जीरो डिग्री से कम होने पर भी रक्त नहीं जमता है। यह शरीर में पानी का कमाल है। मनुष्य के शरीर के तरंग जो उर्जा है एवं जो विचार, शब्द, स्वर, सोच के रूप में हो सकता है, जल के परमाण्विक संरचना को प्रभावित करता है। शरीर एक स्पोंज की

7. चन्द्रशेखर नौटियाल –एशियन अग्री हिस्ट्री वॉल 13 no 1 2009 scientific validation of incompatible self purificatory charectorstics of ganga water।(5)
8. अजीत वदक्कल healing by increasing cell voltage internet।

गंगाजल में प्रदूषण को लेकर वैज्ञानिक शोध की अपेक्षा अधिक भ्रान्ति फैलायी गयी है। इसमें फार्मास्यूटिकल्स बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ बढ़-चढ़कर भाग ले रही है। सच्चाई है कि इस जल की पारमाण्विक तथा रासायनिक संरचना इसके जल में शुद्धीकरण की क्षमता सबसे बहुत अधिक है। लेकिन जल की मात्रा, जलप्रवाह की गति, रासायनिक खेती, औद्योगिक रासायनिक कचड़ा आदि के कारण इसका जल दूषित हुआ है। फिर भी, गंगा की मौलिक विशिष्टता नष्ट नहीं हुई है। -सं.

तरह है, जिसमे स्थित करोड़ों कोशिकाओं में जल रहता है। कोशिकाओं का यह जल सभी तरंगों एवं आवृत्तियों से प्रभावित होता है।

जल की एक अनूठी विशेषता यह कही जाती है कि इनफोर्मेसन और मेमोरी को अनन्त काल तक संरक्षित एवं सुरक्षित रखता है। जलचक्र के द्वारा जल अपनी मेमोरी को वातावरण में हस्तान्तरित कर सकता है। लेकिन यह आशंका है कि गतिशीलता घटने से जल की इस विशेषता पर कुप्रभाव परता है। यह भी माना जाता है कि जल हर छोटे-बड़े आवृत्तियों वाले ब्रह्माण्डीय विकिरणों को ग्रहण करता है, जिससे जो रेजोनेंस/तरंग पैदा होती है, वह प्राकृतिक रूप से लाभकारी होता है। सभी ब्रह्माण्डीय ग्रहों, नक्षत्रों, तारों के साथ जल का विकिरण के माध्यम से आदान प्रदान होता है।

जल एवं हमारा शरीर

एक होता है 'जीवन्त जल'; ऐसा जल जो अपने में घुले हुए इनफार्मेशन एवं मेमोरी को अधिक से अधिक हस्तान्तरित कर सके। हम जो भी जल, जिस किसी रूप में, ग्रहण करते हैं, वह अपने में घुले हुए इनफार्मेशन /मेमोरी को हमारे शरीर के कोशिका के जल में हस्तान्तरित कर देती है। कोई भी स्वर, चित्र, विचार, सोच जो हम अनुभव करते हैं, वह हमारे शरीर के वाटर-बॉडी में तरंग के रूप में आ जाती है और हमारे मस्तिष्क में unconscious रूप में संरक्षित हो जाती है। जल के परमाणु हमारे विचार, शब्द, सोच, भावना से प्रभावित होता है। इस प्रकार जल का हमारे consciousness के साथ interaction होता है। जल की मेमोरी में जो इनफार्मेशन उसे अपने वातावरण से प्राप्त होकर संरक्षित रहता है, उसे वह मानव शरीर के वाटर -बॉडी में डाल देता है। चूँकि जल अत्यधिक purification और filtration के बाद भी अपने मेमोरी को संरक्षित रखता है, इसलिए मानव शरीर के वाटर-बॉडी को इसका हस्तान्तरण हर हालत में सम्भव है। इसलिए वाटर केमिस्ट्री ही मानव जीवन की केमिस्ट्री है। नाना प्रकार के आवृत्तियों वाले तरंगों की सूचना को संरक्षित रखनेवाला जल के ही कारण कोशिकाएँ आपस में interaction कर पाती हैं, जिससे शरीर में मेटाबोलिज्म हो पाती है।

रासायनिक खाद के दुष्प्रभाव

वर्तमान में नदी जल में नाइट्रोजन एवं फास्फोरस का उच्च स्तर है, वह खेतों में रासायनिक खादों एवं छिड़काव के कारण हैं, जो जल के साथ बहकर आता है। साथ ही शहरों के नाले का सीवेज है। इन अतिरेक रसायनों से जल में हुए eutrophication के कारण जल में घुलनशील ऑक्सीजन की मात्रा घट जाती है और जितना कम ऑक्सीजन, उतना ख़राब जल। अतएव कृषिजन्य एवं शहरी सीवेज से उत्पन्न रसायनों की मात्रा जल से न सिर्फ दूर करनी होगी, अपितु नए सिरे से इन्हें जल में आने से रोकना होगा।

जल में nitrate की अधिकता मनुष्य एवं पशु के स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकारक है; छोटे बच्चों के लिए तो और भी अधिक। 1 लीटर जल में 10 मिलीग्राम से अधिक nitrate हानिकारक है। शरीर में nitrate nitrites में बदल जाता है।

यह nitrites हमारी कोशिका के RBC के हिमोग्लोबिन के साथ प्रतिक्रिया कर methemoglobin बनाता है, जो रक्त द्वारा कोशिकाओं में ऑक्सीजन ले जाने की क्षमता पर ख़राब असर डालती है। साथ ही, जल के साथ पेट में गया nitrate और nitrites अन्ततः nitrites के रूप में भोजन पाचन से उत्पन्न amines के साथ प्रतिक्रिया कर nitrosamines बनाती है जो carcinogenic यानि कैंसर उत्पन्न करने वाली होती है।

ऑक्सीजन जल में सरलता से घुल जाती है। यहाँ तक कि हवा में इसकी मात्रा का जितना प्रतिशत है, उससे भी अधिक प्रतिशत यह जल में रह सकती है। इसलिए ऑक्सीजन हवा से जल में जाती रहती है। जल में ऑक्सीजन का यह diffusion जल में हवा के दवाव तथा उत्पन्न तरंग से बढ़ जाती है। **जितना ही अधिक जल में turbulence उतनी अधिक ऑक्सीजन जल में घुलेगी।**

गर्म जल में ऑक्सीजन अधिक होता है, बाँध के कारण ऊपर का जल जो अधिक गर्म होगा, में ऑक्सीजन अधिक होता है, नीचे के स्तर में कम होगा। इसलिए उपरी जल में एरोबिक decomposition अधिक, परन्तु नीचे अनेरोबिक decomposition अधिक होगा परिणामस्वरूप नीचे हानिकारक अमोनिया एवं हाइड्रोजन सल्फाइड गैस अधिक उत्पन्न होगी। जल के विभिन्न स्तरों में भिन्न भिन्न तापमान रहता है जिससे अनेरोबिक decomposition अधिक होती है जो हानिकारक गैसों को उत्पन्न करती है। यहाँ भी बाँध /बराज का दुष्प्रभाव स्पष्ट होता है।

नदी पर बाँध के दुष्प्रभाव

इसलिए बाँध बनाकर जल को संरक्षित रखना बुद्धिमानी नहीं है। इससे जल का turbulence ख़त्म होता है। इसलिए जल को हमेशा धरती के नीचे संरक्षित रखा जाना चाहिए। प्रवाहमान नदी अपने किनारे से मीलों दूर तक जल को धरती के नीचे सुरक्षित रखती है।

बाँध मछलियों को भी बहुत दुष्प्रभावित करता है। हालाँकि मछलियों हमेशा ही घुमती रहती है, मगर इनके जीवन में दो भ्रमण बहुत महत्त्वपूर्ण है। पहला जब अंडे से निकला हुआ नवजात मछली Spawning Ground से दूर अपने पानी में जाने हेतु यात्रा करती है और दूसरी तब जब वयस्क होकर अंडे देने हेतु Spawning Ground के लिये यात्रा करती है। अब बाँध/ बैराज बन जाने के बाद उसे अपने Spawning Ground को जाने हेतु कठिन अवरोध बन गया है। गंगा की हिलसा मछली अथवा कोसी की मछलियाँ के Spawning Ground दूर हिमालय की तलहटी में होती है। इसलिए नदियों के मछलियों को हिमालय की यात्रा करना उनके जीवन चक्र के लिए अनिवार्य है। फरक्का बैराज में बना हुआ fish ladder मछलियों के निर्बाध यात्रा को सुनिश्चित नहीं कर पाता है। परिणामतः जल में मछलियों की मात्रा का घटना स्वाभाविक एवं अवश्यम्भावी है। गंगा में हिलसा की मात्रा अथवा कोसी में मछलियों की मात्रा में गम्भीर कमी का यही कारण है। गंगा पर बना हुआ फरक्का बैराज, कोसी का बैराज अथवा गंडक का बैराज- सबों ने हमारी मत्स्य-सम्पदा को दुष्प्रभावित किया है। बाँध से नदी का सामान्य प्रवाह कुप्रभावित होता है। अनेक मछलियाँ पर जैसे salmon प्रवाह के सामान्य रहने पर आरंभ में नीचे आती है और बाद में अंडे देने हेतु ऊपर जाती है। बाँध से सामान्य प्रवाह कुप्रभावित होने पर ऐसे मछलियों का जीवन चक्र गड़बड़ा जाता है। बाँध से सिल्ट का जमाव होता है। सिल्ट में मौजूद कार्बोनिक पदार्थ जो जीव जन्तुओं का पोषण है, नीचे नहीं जा पाता है, जिससे वे कुपोषित होते हैं। ऊपर में इन कार्बोनिक पदार्थों के ऊपर भारी धातु एवं अन्य प्रदूषणकारी पदार्थ जमा हो जाता है। इससे मछलियों के Spawning Ground नष्ट होते हैं।

बाँध, बैराज, रासायनिक पदार्थों आदि के कारण नदी जल का तापमान बढ़ने की आशंका है, अब इतनी छोटी मछलियों में अंडे पाए जाते हैं, जो असामान्य है। यह एक असमय परिपक्वता का मामला है। जैसे मनुष्य में असमय परिपक्वता देखने को मिल रही है, वैसे ही मछलियों में भी हो रहा है।

बराज अपने साथ सिल्ट, सेडीमेंट और ढेर कार्बोनिक पदार्थों को रोक लेती है। ये पदार्थ मछलियों सहित नाना तरह के फौना के लिए भोजन तो है ही, साथ ही यह उन्हें निवास स्थान प्रदान करता है तथा इस पर phytoplankton एवं शुक्ष्म जीवाणु उत्पन्न होते हैं। इस तरह एक habitat का विकास होता है। एक food web की रचना हो जाती है। बैराज के कारण ऐसा food web और habitat बैराज के नीचे नहीं बन पाता है।

बाँध के कारण गंगा पर दुष्प्रभाव

डैम के कारण गंगा में जल की गतिशीलता घटी है, फलतः नीचे habitat विकास दुष्प्रभावित हुई है और जीव जन्तुओं के प्राकृतिक विकास में क्षरण होना स्वाभाविक है। वस्तुतः पूरे पर्यावरण, जल की गुणवत्ता एवं नदी नालाओं में संघातिक विकृति हुई है। नदियों पर हुए सांघातिक दुष्प्रभाव से इन पर अवलम्बित लाखों लोगों जो अपना रोजगार पाते थे, को भीषण क्षति हुई है। इससे खेती में गुणवत्ता एवं उत्पादन क्षमता में चिन्ताजनक ह्रास हुआ है, जिसके ही परिणामस्वरूप रासायनिक खादों एवं छिड़काव के उपयोग इतना अधिक बढ़ गए है कि अब कृ षि उत्पादों के उपयोग पर ही प्रश्नचिन्ह उठ गया है। वैकल्पिक रूप में और्गानिक खेती, कुदरती खेती, bayodaynamik खेती आदि सामने आयें हैं।

बाँध/बैराज ने पृथ्वी के नीचे स्थित जल भंडार यानि aquifer को भी प्रदूषित किया है। साथ ही aquifer के नदी द्वारा पुनर्भरण भी दुष्प्रभावित हुई है। नदी अपने प्रवाहमान जल से अपने किनारे से मीलों दूर तक पुनर्भरण करती है।

बाँध जल के तापमान में बदलाव लाता है। प्रवाह के गति घटने से तापमान बढ़ता है। प्रवाहमान जल का तापमान स्थिर प्राय रहता है। बाँध के जलाशय में उपरी सतह पर अधिक तापमान और निचली सतह पर कम तापमान होता है। तापमान के इस विभिन्न सतहों के कारण जीव जन्तुओं का विकास दुष्प्रभावित होता है। मछलियाँ तो तापमान- परिवर्तन से काफी प्रभावित होती है। देसी मछलियों के क्षरण में यह कारण बहुत महत्त्व रखता है। बाँध के जलाशय के जल में ऑक्सीजन के मात्रा कम होती है। कम ऑक्सीजन वाले जल में जीव जन्तु का विकास दुष्प्रभावित होता है।

डैम के कारण सिल्ट जमा होता है। इससे जलाशय का निर्माण होता है। इसके कारण नीचे पानी की मात्रा घटती है, जिसके कारण नदी की सतह अधिक ताप शोषित करती है और तापमान बढ़ता है। जलाशय में जंगल और पेड़ भी डूबते हैं दबे हुए कार्बोनिक पदार्थों के सड़ने पर ग्रीन हॉउस गैस मीथेन बनती है जो पानी को प्रदूषित कर Eutrophication पैदा करती है। इससे पानी में अलगी का आधिक्य और ऑक्सीजन का अभाव बनता है जो मछलियों और जीवों के लिए घातक है।

डैम के जलाशय के कारण भूकम्प की सम्भावना भी अधिक बनती है। डैम से भूमि का क्षरण भी बढ़ता है। नीचे के क्षेत्र में उपजाऊ सिल्ट की मात्रा घट जाती है, फलतः रासायनिक खादों और जी ऍम फ़ूड कम्पनी का दुष्चक्र किसानों के समक्ष उत्पन्न हो जाता है। जलाशय के पानी से बाष्पीकरण भी सम्भवतः वातावरण परिवर्तन और global warming की समस्या में एक कारक है। जलविद्युत् डैम से मीथेन बड़ी मात्रा में बनती है। वातावरण परिवर्तन में मीथेन की भूमिका कार्बन डाइऑक्साइड से अधिक है।

गंगा का प्रदूषण 1854 ई. में हरिद्वार बाँध के साथ आरम्भ हुआ। इसने जल की गति को घटाया। भारत के 12वीं (2012-17) पञ्चवर्षीय योजना में उत्तराखण्ड में जल विद्युत् उत्पादन हेतु 24 नए डैम बनाने पर काम हो रहा है। इसके अतिरिक्त 54 नए अन्य डैम प्रस्तावित हैं।

ऐसे डैम को बनाने और प्रस्तावित करनेवालों को क्या यह नहीं पता है कि डैम से नदी बर्बाद होती है? क्या वे नहीं जानते हैं कि गंगा को अपनी स्वच्छता बनाये रखने के लिए इसमे अविरल जल प्रवाह की जरुरत है? जब डैम से अचानक पानी नीचे जाता है तब नीचे का habitat क्षरित होता है, जिसमें फ्लोरा/फौना एवं अन्य जीवाणु सही से विकास नहीं कर पाते हैं।

कानपुर में सैकड़ों में tanneries हैं जो गंगा के बैक्टेरियोफेज़ेज़ और हिमालयी colloids को क्षति पहुचाती है जिससे

गंगा अपनी सफाई स्वयं नहीं कर पाती है। यह organic pollutants को दूर कर सकती है लेकिन non-biodegradable chemical pollutants इसे प्रदूषित कर देती है। कानपुर के कारखानों विशेषकर चमड़ा उद्योग से निकलने वाले सीवेज में संघातिक सीमा तक आर्सेनिक, कैडमियम, मरकरी, निकेल और क्रोम होते हैं। सीवेज के chromium से ढेरों बीमारियाँ यथा - अस्थमा, bronkitis, स्वसन के रोग, कैंसर, बाँझपन, इन्फेक्शन्स आदि होते हैं। गंगा में जितनी मात्रा में रासायनिक प्रदूषक तत्त्व डाले जाते हैं, वह इसकी शुद्धिकरण की क्षमता से सम्भवतः काफी अधिक है।

शुद्धि के लिए भावी योजनाओं की दिशा

यहाँ BOD (Biological oxygen demand) और COD (Chemical oxygen demand) की बात उठती है। BOD से waste water treatment plant की प्रभावोत्पादकता की जाँच हो सकती है। COD भी पानी के स्वच्छ होने की जाँच है। इसलिए BOD और COD की जाँच विभिन्न स्थलों पर नियमित रूप से करते हुए इसके फलाफल को इन्टरनेट पर प्रचारित किया जाना चाहिए।

Sewage treatment plant की जगह जगह पर नितान्त जरुरत है। चाहे Sewage उद्योगों से अथवा शहरी नालों से निकले हो- दोनों में ही non-biodegradable और bio-accumulative chemicals भरे होते हैं। इनकी मात्रा इतनी अधिक है कि अवरुद्ध गंगा की संघातिक रूप में दुष्प्रभावित आन्तरिक क्षमता इन्हें साफ नहीं कर पाती है। अतएव कृषिजन्य एवं शहरी सीवेज से उत्पन्न रसायनों की मात्रा जल से न सिर्फ दूर करनी होगी, अपितु नए सिरे से इन्हें जल में आने से रोकना होगा। शहरी और औद्योगिक कचरे के निष्पादन हेतु बड़ी संख्या में incinerators with double generator back up की स्थापना करनी होगी। सभी औद्योगिक इकाइयों और केन्द्रों को अपना sewage को आतंरिक रूप से ट्रीटमेंट करने हेतु सभी आवश्यक उपाय करने के लिए कठोरता से बाध्य करने के नितांत जरुरत है। यह खुशी कि बात है कि नमामि गंगे योजना के तहत इन दिशाओं मे कुछ उपयोगी और महत्त्वपूर्ण कार्य भारत सरकार करा रही है। पानी में मौजूद non-biodegradable plastics-toxic/ bio-accumulative chemicals के घातक प्रभाव की शिक्षा सभी बच्चों को विद्यालय और महाविद्यालय में दिया जाना चाहिए। इसकी भी आशंका है कि हमारे कृषि एवं दुग्ध पदार्थों में आर्सेनिक और chromium की मात्रा घातक रूप में अधिक है। यह भी अंदाजा लगाया जा रहा है कि गंगा घाटी के राज्यों में कैंसर का प्रकोप अधिक है। आर्सेनिक, क्लोराइड, floride एवं अन्य भारी तत्त्व से कैंसर की सम्भावना अधिक हो जाती है। बिहार के गंगा किनारे के अनेक जिलों मे भूगर्भ जल के गंभीर रूप मे प्रदूषित होने कि आम शिकायत मील रही है और जो कुछ जांच रिपोर्ट उपलब्ध हैं, वे इस तथ्य की तसदीक करते हैं।

इस कार्य में बायो-remediation का भी उपयोग करना वांछित है। जैसे **जौ** यानि Barley ऐसा पौधा है, जो अपने जड़, तना, धड, पत्ती में भारी तत्त्व एवं यौगिकों को अवशोषित करता है। जौ के पौधे के सड़ने पर ऐसा algaecide बनता है जो पानी को प्रदूषित करनेवाले अल्गी को खत्म करती है। इसलिए गंगा किनारे क्षेत्र में जौ की कुदरती खेती अधिक करने से इसको निर्मल बनाने में सहायता मिल सकती है। ऐसा ही प्रभावकारी **पटेर (typha)** होता है, जो भारी रासायनिक तत्त्व को अवशोषित करती है। देसी गाय/बैल के गोबर में भी ऐसे प्रदूषण ख़त्म करने की कुदरती क्षमता होती है। ट्रीटमेंट संयन्त्र में गोबर/गोमूत्र के भी उपयोग करने के विन्दु पर विचार किया जा सकता है। जलकुम्भी में भी पटेर(typha) की तरह प्राकृतिक गुण होने की बात कही जाती है। जलकुम्भी को भी नियन्त्रत रूप में उत्पन्न कर प्रदूषण रोकने हेतु इसके इस्तेमाल पर विचार किया जा सकता है।

अमेरिका में 2013 में 51 डैम ध्वस्त किये गए हैं। अलबामा, कालिफोर्निया, कोलोराडो, एडाहो, एलिनोईस, मस्साचुसेट्स, मिशिगन, न्यू जेर्सी, नार्थ कैरोलिना, ओरेगांव, ऑहियो, पेनिसलवानिया, वेर्जिनिया, विन्स्कोंसिन आदि में

500 से अधिक डैम ध्वस्त कर नदी को मछली, फ्लोरा, फौना और लोगों के हित में पुनरुज्जीवित किया गया है। क्या यह भारत में विचारणीय नहीं होना चाहिए?

गंगा के दोनों किनारे प्लास्टिक मुक्त जोन बनाने की जरुरत है। इसके उल्लंघन की दशा में कठोर दण्ड का भी प्रबधन रहना चाहिए। बैटरी के अवशेष से भी प्रदूषण होता है; इसका भी ध्यान रखा जाना है। नदी किनारे मलमूत्र उत्सर्जन रोकने हेतु विशेष व्यबस्था करना होगा। गंगा किनारे बड़ी संख्या में विद्युत् शवदाह गृह की स्थापना हो जिसमे double back up generator हो। गंगा का प्रदूषण फु ल, कागज, मिट्टी के दीया से नहीं होती है। प्रदूषण होती है- non-biodegradable plastics और bio-accumulative toxic chemicals से, जो औद्योगिक अवशिष्ट एवं शहरी नालों तथा रासायनिक खेती से मूलतः उत्पन्न होता है। प्राप्त जानकारी के अनुसार भारत सरकार के निदेश के आलोक में गंगा किनारे स्थित सभी नगर निकायों द्वारा sewage ट्रीटमेंट हेतु कार्य-योजना बनाकर प्रस्तुत करने की कार्रवाई की जा रही है।

नदी में एक न्यूनतम प्रवाह हमेशा बहते रहना इसके स्वस्थ्य के लिए अनिवार्य है- ऐसा विशेषज्ञों का अभिमत है। लेकिन कितना पानी? इस पर कोई स्पष्ट निष्कर्ष जल विशेषज्ञों में नहीं बन पायी है। हालाँकि एक नया विचार- environmental flow(e-flow) सामने आया है। IIT रुड़की और IIT consortium ने अपने अपने रिपोर्ट में e-flow को अवश्यक बताया है। e-flow का सामान्य अर्थ है- नदी में हमेशा इतना पानी बहते रहना कि इसकी जीवन्तता और इसके द्वारा की जा रही आवश्यक सेवाएँ यह करने में सक्षम बनी रहे।

श्री रामास्वामी ऐएर पूर्व सचिव जल संसाधन भारत सरकार का विचार है कि नदी को अपना पारिस्थतिकी (regime) बनाये रखने के लिए प्रवाह अनिवार्य है। इसी के कारण नदी अपने को निर्मल बनाती है, जलीय जीव जंतु का संपोषण करती है, भूगर्भ जल स्तर को पुनर्भरण करती है एवं लोगों के जीविका को उपलब्ध कराती है। इसीसे नदी नौ-परिवहन, estuaries का संरक्षण,लावणिकरणपर नियन्त्रण और अपने riparian क्षेत्र में लोगों के सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक कार्यो को सम्भव बनाती है।

अनेक पर्यावरणवादियों का विचार है कि नदी को उसके अपने हिसाब से बहने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। लेकिन फिर आज विशाल स्तर पर विकसित डैम, बाँध, सड़क, बैराज, बस्तियों आदि का क्या होगा? इसलिए यह विचार व्यवहार-सम्मत नहीं लगता है।

नदियों में न्यूनतम प्रवाह : एक उपयुक्त विकल्प

इस स्थिति में e-flow सर्वाधिक उपयुक्त विकल्प प्रतीत होता है। इससे जहाँ नदी अपने को सुरक्षित एवं संरक्षित रख सकती है, वहीं दूसरी ओर नदी पर विभिन्न प्रयोजनों के कारण आश्रित विभिन्न वर्गों के हित भी पूरा करने में नदी सक्षम हो सकती है। लेकिन न्यूनतम नदी प्रवाह क्या होगा?

भारत में अभी ऐसा कोई कानून नहीं है, जिसमे नदी के न्यूनतम प्रवाह को सुनिश्चित करना प्रावधानित हो। मात्र हिमाचल प्रदेश में 2005 की सरकारी अधिसूचना के अनुसार यह प्रावधान है कि दिसंबर से मार्च के औसत प्रवाह का न्यूनतम 15 % नदी में अवाध रूप से बहता रहे। बाद में पर्यावरण और वन मन्त्रालय ने 10 से 15 % न्यूनतम प्रवाह रखने हेतु अधिशुचित किया है। इस सीमा को अब 20% न्यूनतम कर संशोधित किया गया है। लेकिन इस सन्दर्भ में श्री रामास्वामी ऐएर का अभिमत महत्त्वपूर्ण है कि न्यूनतम प्रवाह के निर्धारण से शेष सम्पूर्ण प्रवाह के विचलन का खतरा पैदा हो सकता है जो कि नदी के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो सकता है।

1970 के दशक में न्यूनतम प्रवाह की अवधारणा विकसित हुई। यह नदी में इसके औसत वार्षिक प्रवाह के न्यूनतम अंश को अनिवार्य बताता है। लेकिन शोध से यह पता चलता है कि एक न्यूनतम प्रवाह नदी को भींगा रख सकता है, लेकिन इसकी पारिस्थितिकी को बनाये रखने के लिए इसके सभी stages- उच्च, निम्न और मध्यम प्रवाह अवश्यक है। गंगा को

स्वच्छ बनाने हेतु गठित IIT consortium ने भी अपने प्रतिवेदन में इस तथ्य की पुष्टि की है कि गंगा को स्वच्छ बनाने हेतु उच्च प्रवाह की भी आवस्यकता है। यहाँ यह भी स्मरण रखा जाना है कि गंगा की विलक्षणता उसके turbulent motion और विशाल फ्लड क्षेत्र होने की स्थिति में कार्य करती है। इसलिए गंगा या किसी भी अन्य नदी में उच्च प्रवाह को खत्म करने पर उसकी स्वच्छता पुनर्स्थापित नहीं हो सकती है।

IIT consortium ने सरकार को समर्पित अपने रिपोर्ट[9] के 'अविरल धारा' खण्ड में यह सुझाव दिया है कि गंगा बेसिन में विकेन्द्रित जलसंग्रह-स्थलों को अविलम्ब सुदृढ़ और विकसित किया जाय। इसका सीधा तात्पर्य है कि नदियों, नालाओं पोखरों, तालाबों, चौरों आदि को जीर्णोद्धार कर उन्हें नदियों के अतिरेक जल को प्राप्त करने तथा उसे संगृहीत रखने में सक्षम बनाने हेतु आवश्यक उपाय किये जाएँ। इससे सतही जल के साथ साथ भूगर्भ जल की अधिक मात्रा संरक्षित होगी जो गर्मी एवं अन्य समय में न सिर्फ सभी प्रकार के वाटर बॉडी को जलापूर्ति करेगी अपितु हमारे विभिन्न उपयोगों के लिए यांत्रिक तरीके से निकलने हेतु उपलब्ध रहेगी। बिहार और विशेषकर उत्तर बिहार में यह उपाय बहुत ही उपयोगी एवं सम्भवतः एकमात्र टिकाऊ निदान है, जिसमे बाढ़ की समस्या और सुखाड़ के संकट- दोनों का सम्यक निदान छिपा हुआ है। बिहार-जैसे क्षेत्र में यह और अधिक महत्त्व रखता है, जहाँ विगत पाँच दशक से वर्षा की मात्रा घटने की प्रवृत्ति परिलक्षित हो रही है। योजना एवं विकास विभाग बिहार पटना के वर्षा सांख्यिकी रिपोर्ट 1914 से यह तथ्य प्रकाश मे आता है कि बिहार विशेषतः उत्तर बिहार में 1950 के दशक की तुलना में 2010 के दशक तक वर्षा की मात्रा लगभग 25% कमी आ गयी है। जो भी वर्षा होती है, उसमे भी अन्तरालीय अनियमितता गम्भीर है। यह वर्षापात वाले दिनों की कम संख्या से स्पष्ट होता है। यह और अधिक कष्टकारी एवं विनाशकारी हो जाता है, जब वर्षापात घटने के बावजूद बाढ़ का क्षेत्र- इसकी इंटेंसिटी- इसकी अन्तरालता -इससे उत्पन्न क्षति में कोई कमी नहीं परिलक्षित होती है। नए-नए क्षेत्रों में बाढ़ देखने को मिल रहे हैं। बिहार में जल का स्वास्थ्य, इसकी समुचित मात्रा और इसकी समय पर उपलब्धता सुनिश्चित करने में गंगा की बड़ी भूमिका है।

गंगा को बिहार के योगदान का वैशिष्ट्य

बिहार के लिए गंगा का महत्त्व अन्य राज्यों की तुलना में अधिक है। गंगा को उसकी जलराशि का लगभग 70-75 % बिहार प्रदान करती है। लेकिन गंगा के प्रति जो एक तरह की उदासीनता अन्यमनस्कता और पर्याप्त सक्रियता का अभाव यहाँ सामान्यतः परिलक्षित होता है, वह बिहार के लिए चिन्ताजनक है। यह सच है कि गंगा के कुल लम्बाई- 2688 किलोमीटर में से बिहार में इसकी लम्बाई 448 किलोमीटर है, लेकिन लम्बाई से अधिक महत्त्व रखता है इसकी जलराशि। जैसा कि **द्वितीय बिहार इररिगसन कमिशन रिपोर्ट 1993**[10] दर्ज करती है, इस विन्दु पर तथ्य यह है कि बिहार के बक्सर में प्रवेश करने के स्थान पर गंगा का औसत प्रवाह 19000 cusec प्रति सेकेंड है, जबकि बिहार से बाहर जाने के स्थल के नीचे फरक्का में इसका प्रवाह 180000 cusec प्रति सेकेंड रहता है। इस प्रकार मुख्यतः बिहार और यत्किंचित् रूप में झारखण्ड गंगा के कुल जलराशि का लगभग 70-75 % भाग आपूर्ति करती है। बिहार में इसके प्रवेश करने पर दाहिने तरफ से कर्मनाशा, सोन, पुनपुन, किउल, हरोहर, चानन, बदुआ आदि तथा बाँए तरफ से घाघरा, गण्डक, बूढी गण्डक, बागमती, कमला माँ, बलान, कोसी, परमान और महानन्दा इसमे अपनी अपनी जलराशि डालकर गंगा को सुदृढ़ और समृद्ध बनाती है। पश्चिमी हिमालय की जो जलराशि भागीरथी, अलकनन्दा, यमुना आदि के माध्यम से गंगा को मिलती है, उससे बहुत बहुत अधिक इसे मध्य हिमालय से उत्तर बिहार की नदियों यानि बाँए तरफ वाली के माध्यम से मिलती है। बिहार से गुजरने वाली सभी नदियाँ (महानन्दा को छोड़कर) बिहार के ही भू-भाग में गंगा में मिल जाती है। गंगा को सर्वाधिक जलापूर्ति करनेवाली बिहार का हक़ इस तरह इस पर सर्वाधिक होता है। भारत के राष्ट्रीय हित को अक्षुण रखते हुए बिहार का यह हाइड्रोलोजिकल वैशिष्ट्य भी सभी को समझना होगा। अन्यथा जैसा कि वर्तमान दयनीय स्थिति है, फरक्का बराज को सुखा के समय अधिकांश जलापूर्ति

करनेवाली बिहार स्वयं क्षुधित और अपने औद्यौगिक जरूरतों के लिए आवश्यक पानी हेतु तरसते रहनेवाली स्थिति बनी रहेगी। **बिहार को स्वयं सक्रिय होने की जरुरत है।**

यहाँ यह बताना प्रासंगिक है कि फरक्का बराज के 1971 ई में निर्माण के साथ ही बिहार के उत्तरी भाग में प्रलयंकारी बाढ़ों का एक नया दौर आरम्भ हुआ, जो समय के साथ-साथ बढ़ता ही जा रहा है। भारत के सर्वाधिक बाढ़ग्रस्त क्षेत्र बिहार में इसकी बाढ़ का एक प्रमुख कारण फरक्का बराज को माना जाता है। जिस फरक्का बराज हेतु बिहार ने अपनी कु रबानी दी, वह फरक्का बराज पश्चिम बंगाल के हुगली बन्दरगाह को भी नहीं बचा सका, जिसके लिए इस बराज का निर्माण किया गया था। पर्यावरणवादियों का मत है कि बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश में नदियों के संघातिक अधोपतन/ क्षरण हेतु फरक्का बराज गम्भीर रूप में जिम्मेदार है। बिहार की नदियों के bed-level में जो गम्भीर वृद्धि हुई है, जिसके चलते बिहार में बाढ़ का प्रकोप अत्यधिक विनाशकारी हो चुका है, उसके लिए फरक्का बराज के कारण गंगा का हुआ उथलापन एक मुख्य कारक है। इसलिए **फरक्का बराज पर पुनर्विचार जरुरी है।**

गंगा की अविरलता और निर्मलता के लिए इसमे **turbulent गति होना** तथा इसके **फ्लड बेसिन का सेक्शनल area अधिक से अधिक** होना अनिवार्य है। इसके turbulence को तो उत्तराखंड एवं उत्तर प्रदेश में ख़त्म किया गया है इसलिए इसे तो मौलिक रूप से उन्हीं क्षेत्रों में उपाय कर सुधारा जा सकता है। बनारस से ऊपर गंगा को सर्वाधिक जरुरत है पानी की जिसे अधिकांश रूप में जगह जगह पर इससे नहरों को निकाल कर इसे प्रदूषित होने के लिए विवश किया गया है। संघातिक रूप से क्षतिग्रस्त गंगा को अपस्ट्रीम अधिक इसके नैसर्गिक पानी की सर्वाधिक जरुरत है। इसमें सालों भर पानी की एक न्यूनतम मात्रा इसकी अविरलता और निर्मलता के लिए अनिवार्य है।

गंगा और चौर का तादात्म्य

जहाँ तक बिहार की बात है, गंगा के अतिरेक जलराशि को बाढ़ के समय अधिक से अधिक क्षेत्र में समायोजित करने और इसकेफ्लड बेसिन को विशाल बनाने के लिए यहाँ प्रकृति ने अनेक बड़े बड़े चौर की रचना की है। भोजपुर में हेंठार (गांगेय क्षेत्र), सारण में दिघवारा, वैशाली में राघोपुर और बालागच्छ,पटना में मोकामा ताल, खगड़िया में फरकिया, नवगछिया में छई, कटिहार में गोंड्वारा (कोढ़/बरारी/फलका का दक्षिणी भाग), डंडखोरा (कटिहार जिला का दक्षिणी भाग), एवं कंकजोल (मनिहारी, राजमहक का गांगेय क्षेत्र) **आदि** ऐसे ही विशाल चौर थे जिसमे गंगा का अतिरेक जल जमा हुआ करता था। बिहार की लोक परम्परा में चौर को नदी का भाई बताया गया है। गंगा किनारे के सभी चौर कालक्रम में विनष्ट होते रहे। गंगा की सहायक धाराओं के बेसिन में भी मुख्यतः उत्तरी बिहार के क्षेत्र मे बड़ी संख्या मे छोटे-बड़े चौर हुआ करते थे; कुछ चौर तो अभी भी हैं। चाहे गंगा किनारे के चौर हों या इसकी सहायक धाराओं के, चौर का मुख्य कार्य होता था : नदियों के वर्षाकालीन अतिरेक जल को संरक्षित और जमा करना; जनवरी से अप्रैल तक जब उत्तर बिहार के हिमालयी नदियों और दक्षिणी बिहार के पठारी नदियों मे जलाभाव हो जाता था, तब उसके चौर अपने अपने नदियों नालाओं को जल की पूर्ति किया करती थी। इस तरह गंगा और इसकी सहायक धाराओं मे न्यूनतम फ़्लो बना रहता था और नदियों कि इन्टेग्रिटी गर्मी महीनों मे बनी रहती थी। इस प्रकार, गर्मी मे गंगा के अस्तित्व को सुरक्षित रखने में बिहार की महती भूमिका रही है। मगर अब गंगा और इसके सहायक नदियों में congestion तथा इनके बहाव में गंभीर अवरोधों ने चौर नष्ट कर दिए हैं, नदी संरक्षण का उपरोक्त कार्य खत्म हो चुका है; स्वभावतः सभी नदियों में बाढ़, सुखाड़ की समस्या गम्भीर हो चुकी है। तो फिर गंगा कैसे स्वस्थ रह सकती है? इन चौरों में गंगा के अतिरेक जल को पुनः controlled flooding के तरीके से आंशिक समायोजित

9. IIT consortium इंटेरिम रिपोर्ट 2014-15

करने की सम्भावना पर तलाश किया जा सकता है।

यहाँ यह भी प्रासंगिक है कि जब तक चौर और गंगा सहित अन्य नदियों का तादात्म्य बना रहा और यह तादात्म्य मोटामोटी 19 वी सदी के उत्तरार्ध में खत्म हुआ जब अवैज्ञानिक तरीके से बड़े पैमाने पर रेल और सड़कों का निर्माण ब्रिटिश सरकार ने अपने उपनिवेशवादी हितों की कलुषित पूर्ति के लिया किया। 19 वी सदी के उत्तरार्द्ध तक बिहार मे कृषि उत्पादन का पर्यावरण,अर्थशास्त्र, अन्नों की स्वास्थ्यकारिता, उत्पादित मात्रा, प्रति एकड़ उत्पादन दर आदि वर्तमान मापदण्ड और स्थिति से न्यून लगभग नहीं था और अनेक मापदण्डों पर तो उस समय बेहतर था जैसा कि 1873-74 के मकडोनेल के कृषि रिपोर्ट[11] और वर्तमान बिहार के कृषि उत्पादन और खाद उपयोग रिपोर्ट (2010-11 से 2015-16 के वार्षिक औसत)[12] तुलनात्मक विश्लेषण से संकेतित होता है। इसलिए गंगा और इसकी सहायक धाराओं के बेसिन मे चौर के साथ इनके नाभिनाल तादात्म्य को पुनर्जीवित और पुनःस्थापित करने की नीति पर गम्भीर विचार की जरूरत बिहार को है।

इनके हम अपने क्षेत्र में गंगा के व्यर्थ बह रहे जल को भू-गर्भ में सुरक्षित जमा कर सकते हैं। इनसे हम अपने चौरों को पुनर्जीवित भी कर सकेंगे। ऐसे क्षेत्र में जल-खेती और वेट्लैन्ड फ़ार्मिंग अपनाई जा सकती है। इस प्रक्रिया में आरम्भ में कुछ क्षति, विस्थापन एवं अन्य कठिनाईयाँ होने की सम्भावना है, जिसके सन्दर्भ में सरकार के स्तर पर विभिन्न तरहों के सहायता/अनुदान और अनुकूल विकासात्मक कार्यो के पैकेज बनाकर आगे बढ़ा जा सकता है। यह बिहार में कुदरती खेती, पशुपालन, प्रदूषण नियन्त्रण, प्राकृतिक फ्लोरा/फोना के विकास, मत्स्य पालन, नदी-पुनरुद्धार, भूगर्भ जल-संचयन आदिमें युगान्तरकारी सकारात्मक परिवर्तन लाने की सम्भावना रखता है।

गंगातटीय क्षरण

बिहार में गंगा का तट और क्षेत्र 19 वी सदी के आरम्भ तक झाड़, घास, वृक्ष आदि से भरपूर था, जो न सिर्फ तट और भूमि क्षरण को रोकती थी, बल्कि ऊपर से आने वाले प्रदूषक तत्त्वों को भी रोक लेती थी। साथ ही इनके औषधीय गुण पानी को भी शुद्ध करती थी। लेकिन अंग्रेजी शासन काल में गंगा तट और क्षेत्र को राजस्व अर्जन हेतु खेती वास्ते बन्दबस्त किया जाने लगा। फलतः गंगा की निर्मलता दुष्प्रभावित होना स्वाभाविक था। इसने बाढ़ को विभिषक भी बनाया जिसके कारण बाँध की आवश्यकता की बात को तर्कसंगत ठहराया जाने लगा। बरौनी से कटिहार के रेलवे ने बाँध के रूप में गंगा की जीवन्तता को सर्वप्रथम दुष्प्रभावित किया। ज्ञात हो कि बिहार में गंगा का दक्षिणी तट उच्च है जबकि उत्तरी तट काफी निम्न; इसलिए गंगा उत्तर की ओर अपने अतिरेक जल को बाढ़ के समय फैलाती रही है और इसलिए अधिकांशतः चौर उत्तर की ही ओर थे। इसलिए उत्तर की ओर गंगा के लिए controlled flooding के hydraulik तरीके पर विचार करने की जरुरत है। गंगा किनारे स्थानीय किस्मों के flora की हरी पट्टी विकसित करने की नितान्त आवश्यकता है।

जैविक खेती से गंगा की शुद्धता का सम्बन्ध

गांगेय क्षेत्र में बड़े पैमाने पर कुदरती और आर्गेनिक खेती को बढ़ावा देना होगा। इसके लिए देसी गोधन के पुनरुद्धार की योजना बनानी होगी। देसी गाय/बैल के गोबर खाद, विदेशी गाय/हाइब्रिड देसी गाय-बैल और भैंस के गोबर खाद से बहुत अधिक प्रभावकारी होता है। देसी गाय का दूध भी A 2 प्रकार और ओमेगा-3, बीटा-कैरोटीन, CLA युक्त स्वास्थ्यबर्धक होता है जिसके वनिस्पत अन्य गायों के दूध A1 प्रकार का है जो हानिकारक है। देसी गाय/बैल के गोबर से तैयार नाडेप कम्पोस्ट, इसके मूत्र से निर्मित pestcide, खेतों में प्राकृतिक रूप से विकसित केंचुआ एवं अन्य कृषि मित्र जीवाणु /जन्तु/ अलगी आदि, दलहन की खेती से उत्पन्न नाइट्रोजन फिक्सेशन, श्री विधि,हरा खाद, संवर्धित देसी बीज आदि कुदरती/

10. द्वितीय बिहार इररिगसन कमिशन रिपोर्ट जल संसाधन विभाग बिहार पटना वॉल ii 1993

प्राकृतिक खेती को सँभालते हुए रासायनिक खाद/पेस्टिसाइड को पूर्णतः विस्थापित कर सकती है। यह खेती सस्ती, टिकाऊ, आर्थिक रूप में लाभप्रद, पर्यावरण के अनुकूल एवं उत्पादकता में अन्य किसी भी खेती से अन्यून होता है। प्रकृति ने बिहार को कुदरती खेती के रोल-मोडेल के रूप में विकसित किया है। बिहार के खेती की वर्त्तमान दुर्दशा हमारे नदियों के दुर्दशा का परिणाम है। इसलिए गंगा से आरम्भ कर अन्य नदियों के पुनरुद्धार के साथ ही बिहार कुदरती खेती/देसी कैटल का पशुपालन/ मत्स्य-पालन में भारतीय और यहाँ तक कि वैश्विक रोल-मोडेल बन सकता है। ऐसे प्राकृतिक हरीतिमा में उगने वाले herbs/ shrubs से आयुर्वेद संरक्षण एवं योग के आधार पर स्वास्थ्य संरक्षण व्यवस्था को सुदृढ़, सर्वव्यापी एवं सुलभ बनाया जा सकता है। बिहार मे गंगा किनारे के जिलों मे ऑर्गैनिक खेती करने कि सरकारी नीति बनी है और इस पर कार्य भी आरंभ हुए हैं। मगर इस ऑर्गैनिक खेती की योजना में मौलिक कमजोरी है कि इसमे खेत मे केंचुए को विकसित होने देने का कार्य नही किया जाता है बल्कि बाहर मे वर्मी काम्पोस्ट बनाकर उसे खेत में डाला जाता है। इससे खेत मे नैसर्गिक रूप मे केंचुआ विकास नहि हो सकता है। साथ ही वर्मी काम्पोस्ट बनाने मे जिस विदेशी मूल के केंचुआ का उपयोग होता है, उससे खेत में प्राकृतिक सेंद्रियता का विकसित होना सम्भव नहीं लगता है। ऑर्गैनिक खेती हेतु खेत मे भारतीय देसी मूल के केंचुआ को नैसर्गिक रूप से विकसित करने और होने देने कि नीति अपनाने की जरूरत है। तभी खेत मे कार्बन और नाइट्रोजन का अनुपात सुधार सकता है। खेत में उपयोगी जीवाणुओं की संख्या विकसित हो सकती है।खेत मे समुचित ह्यूमस का विकास हो सकता है। सम्पूर्ण बिहार में, विशेषकर उत्तर बिहार और गंगा के दक्षिण गांगेय क्षेत्र में नैसर्गिक रूप मे उत्पादक ऑर्गैनिक खेती तभी सम्भव है जब गंगा और इसकी सहायक धाराओं का जल सीधे खेतों में पहुँचे। जल प्रबन्धन और नदी नियन्त्रण की वर्तमान नीति मे इस मौलिक उद्देश्य के सन्दर्भ में आवश्यक संशोधन करने की नितान्त जरूरत है। और यह तो निर्विवाद ही है कि गंगा किनारे के शहरों और औद्योगिक इकाइयों से गंगा में गिरनेवाले प्रदूषक sewage को हर हालत में शुद्ध करने के बाद ही इसमें गिरने देना होगा। यह कार्य तो अविलम्ब करने की बांछनीयता है।

गंगा में गिरनेवाली बिहार की सभी नदियाँ भी अपने पुनरुत्थान हेतु राह देख रही है। बगैर गंगा के इनका सर्वतोभावेन पुनरुद्धार नहीं किया जा सकता है। भारत के विकसित राज्यों की अग्रिम पंक्ति में बिहार को शामिल करने हेतु गंगा का पुनरुद्धार यहाँ अनिवार्य है। गंगा के लिए और अपने लिए भी बिहार को भगीरथ बनने की जरुरत है।

***

11. मैकडोनेल ए रिपोर्ट ऑन दी सप्लाइ ऑफ फूडग्रेन्स इन बंगाल 1873-74 बंगाल सेक्रिटेरीअट प्रेस कलकत्ता
12. बिहार कृषि रिपोर्ट (2010-11 से 2015-16 का वार्षिक औसत) इंटरनेट

- **जल शुद्ध, बुद्ध और युद्ध नियुद्ध का कारण है।**
- **जल से प्राण, दान, स्नान, ध्यान होते हैं।**
- **जल से आचार, विचार और संस्कार है।**
- **जल से जन, मन, अन्न के कण हैं।**
- **जल संकट है तो संकट का निराकरण भी है। जल की बचत के निर्देश मानव के कर्तव्य के रूप में बनाए गए हैं।**

(-डॉ.श्रीकृष्ण जुगनू द्वारा प्रेषित)

उत्तराखण्ड के सन्दर्भ में गंगा का भौगोलिक एवं धार्मिक दिग्दर्शन

डॉ. ललित मोहन जोशी*

'स्कन्दपुराण' के स्थल माहात्म्यों में केदारखण्ड एवं मानस खण्ड वर्तमान उत्तराखण्ड राज्य में हैं। यहाँ हिमालय से गंगा निकलकर अनेक रूपों में अनेक नदियों को अपने में समेटती आगे बढ़ती है। इनके किनारे अनेक तीर्थ हैं, जिनमें पञ्च-केदार, पञ्च-बद्री तथा पञ्च-प्रयाग ये तीन पञ्चक अति महत्त्वपूर्ण हैं। इन तीर्थों के सम्बन्ध में लोक-परम्पराएँ भी हैं। इन सभी विषयों को समेटते हुए यह आलेख प्रस्तुत है।

वैदिक साहित्य में अनेक, नदियों का उल्लेख मिलता है। इन नदियों के तटों पर भारतीय संस्कृति का विकास हुआ। कई नदियों के पावन तटों पर ही तीर्थों की स्थापना हुई जो धर्म और अध्यात्म के क्षेत्रों के रूप में विकासत हुए। श्रद्धालु इन तीर्थों की यात्रा को अपार पुण्य प्राप्ति का स्रोत मानने लगे । पुराणों में तो यात्रा को और इन नदियों में स्नान को मोक्ष-मार्ग स्वीकार किया गया। वैदिक नदियों पर बसे तीर्थ स्थलों की मान्यता कालान्तर में घटती गई। 'तरति पापादिकं येन तत्तीर्थम्' के अनुसार तीर्थों में स्नान करने से पापों का नाश होता है, यह धारणा प्रबल होती गई। 'आपो वै देवता:' कहकर पावन नदियों के जल में देवताओं का निवास मानकर इनकी पूजा की जाने लगी।

इस प्रकार नदियाँ पूर्णत: भारतीय संस्कृति को अनुप्राणित करती रही है। भारतवर्ष के सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक जीवन को इन नदियों और तीर्थों ने सदा सुदृढ एवं सशक्त किया है। इनसे भारत की कोटि-कोटि जनता को सहिष्णुता, शान्ति, समभाव तया प्रेम का संदेश मिलता है।

पर्वतराज हिमालम से निकलने वाली गंगा नदी भारत की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण नदी है। इसका महत्त्व भौगोलिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और आधिदैविक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। गंगा के माहात्म्य का वर्णन विष्णु-पुराण, भविष्य-पुराण, वाराह-पुराण, पद्मपुराण, नारद-पुराण आदि ग्रन्थों में विस्तार से वर्णित है। हिन्दी काव्य साहित्य में भी भारतीय कवियों ने गङ्गा की महिमा का सुन्दर वर्णन किया है।

गंगा का भौगोलिक विस्तार

गंगा भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण नदी है। यह भारत और बांग्लादेश में कुल मिलाकर 2525 कि.मी. की दूरी तय करती हुई उत्तराखण्ड में हिमालय से लेकर बंगाल की खाड़ी तक विशाल भू-भाग को सींचती है। गंगा देश की प्राकृतिक सम्पदा ही नहीं, अपितु जन-जन की भावात्मक आस्था का आधार भी है। यह 2071 किमी तक भारत तथा उसके उपरान्त बांग्लादेश में लम्बी यात्रा तय करती हुए, सहायक नदियों के साथ दस लारव वर्ग कि.मी.

*विभागाध्यक्ष, वाणिज्य एवं प्रबन्ध संस्थान, एम.आई.टी. ऋषिकेश (उत्तराखण्ड), अध्यात्म में विशेष अभिरुचि के अतिरिक्त भारतीय ज्योतिष का ज्ञान। पता- गली न. 6, प्रगति विहार, निकट रघुनाथ मन्दिर , ऋषिकेश (उत्तराखण्ड), सम्पर्क– 9997800872, E-mail– imjalmora@gmail.Com

क्षेत्रफल के अति विशाल उपजाऊ मैदान को हरा-भरा करती है। गंगा अपनी उपत्यकाओं (घाटियों) में भारत और बांग्लादेश के कृषि आधारित आय के साधनों के कारण भी है। इसके तट पर ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के भरपूर कई पर्यटन स्थल हैं, जो राष्ट्रीय एवं राज्य की आय का महत्त्वपूर्ण स्रोत है। गङ्गातट के तीन बड़े शहर हरिद्वार, प्रयागराज एवं वाराणसी तीर्थस्थलों का आध्यात्मिक दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व है। इस कारण यहाँ श्रद्धालुओं की संख्या निरन्तर बनी रहती है तथा धार्मिक पर्यटन में महत्त्वपूर्ण योगदान करती है।

गंगा का उद्गम

गंगा स्वर्ग एवं पृथ्वी के अविच्छिन्न सोपान के रूप में दिखती है। "गां पृथिवी गच्छतीति गङ्गा" जो स्वर्ग से पृथिवी पर आयी है, वह गया है। गङ्गानदी जो अपने उद्गम स्थल गंगोत्री से भागीरथी के नाम से प्रसिद्ध है, ऐसा इसलिये क्योंकि राजा भगीरथ अपनी तपस्या द्वारा गंगा नदी को स्वर्गलोक से पृथ्वीलोक पर अपने पितरों का उद्धार करने हेतु लाये थे।

पापनाशिनी गंगा का उद्गम स्थल सदियों से हिन्दुओं का एक सुप्रसिद्ध धार्मिक स्थल रहा है। ऋषि-मुनि, साधु-संत हमेशा से ही इस स्थल की ओर आकर्षित होते रहे हैं। गंगोत्री समुद्र तल से 3048 मीटर मी ऊँचाई पर स्थित है। यह स्थान उत्तरकाशी (उत्तराखण्ड में से 100 कि.मी तथा देहरादून (उत्तराखण्ड) से 300 किमी की दूरी पर स्थित है।[1] यहाँ मौजूद पण्डित एवं पुरोहित आनेवाले तीर्थयात्रियों एवं भक्तजनों के विभिन्न धार्मिक कार्य और कर्मकाण्डों में सहायता करते हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ आनेवाले तीर्थयात्रियों के परिवारों का इतिहास रखने के अलावा वहाँ के इतिहास को भी ये पंडित और पुरोहित सहेज कर रखते हैं। यह एक प्राचीन परम्परा है। कोई यानी अपने पूर्वजों के बारे में पूरी जानकारी देखेंगे कि कब वे इस पावन स्थल पर आये थे, तो उनके मन में एक अलग ही आत्मीय भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक होगा।[2]

पौराणिक कथाओं के अनुसार मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम के पूर्वज रघुकुल के चक्रवर्ती राजा भगीरथ ने यहाँ (गंगोत्री धाम) एक पवित्र शिलाखण्ड पर बैठकर भगवान् शंकर की प्रचंड तपस्या की थी। इसी पवित्र शिलाखण्ड के निकट ही गंगोत्री मन्दिर है। ऐसी मान्यता है कि पांडवों ने महाभारत के युद्ध में मारे गये अपने परिजनों की आत्मिक शान्ति के निमित्त इसी स्थान पर देव यज्ञ का अनुष्ठान किया था।

गंगोत्री के सम्बन्ध में ई.टी. एटकिंसन ने "दी हिमालयन गजेटियर" (वोल्युम- III, भाग वर्ष 1882) में लिखा है कि अंग्रेजों ने टकनौर शासनकाल में गंगोत्री प्रशासनिक इकाई पट्टी तथा परगने का एक भाग था। एटकिंसन आगे बताते हैं कि मन्दिर परिसर के अंदर कार्यकारी ब्राह्मण (पुजारी) के लिये एक छोटा घर था तथा बाहर तीर्थयात्रियों के लिए लकड़ी का छायादार ढाँचा था। 19वीं सदी के दौरान कई अंग्रेज अनुसंधानियों ने गंगा नदी के उद्गम स्थल का पता लगाना प्रारम्भ किया। जे. बी० फ्रेजर ने वर्ष 1815 की गर्मी में अपने दौरे के बारे में लिखा है तथा इसके दो वर्ष पूर्व प्रथम यूरोपीय युवा सैनिक अधिकारी जेम्स हरबर्ट गंगा के स्रोत गोमुख तक पहुँचा।[3]

[1] चारधाम यात्रा- 2012, शुभारम्म (A fresentation From The Times of India)
[2] तदेव
[3] https://hi.m.wikipedia.org/wiki/गंगोत्री (दिनांक 19.05:2021 को देखा गया।)

मौसम-

ग्रीष्म- दिन के समय सुहावना तथा रात्रि के समय शीत। न्यूनतम तापमान 6 सेल्सियस तथा अधिकतम 20 सेल्सियस.

शीतकाल- सितम्बर से नवम्बर तक दिन के समय सुहावना, रात्रि के समम अधिक ठंडा दिसम्बर से मार्च तक हिमाच्छादित, तापमान शून्य से कम।

उत्तरारखण्ड के पञ्चप्रयाग तीर्थस्थल

उत्तराखण्ड राज्य में पाँच ऐसे प्रमुख स्थान है, जहाँ पर दो नदियों आपस में मिलती हैं। इन पाँच प्रमुख स्थानों को पञ्च प्रयाग के नाम से जाना जाता है। ये प्रमुख पञ्च प्रयाग हैं- विष्णुप्रयाग, नंदप्रयाग, कर्णप्रयाग, रुद्रप्रयाग और देवप्रयाग। ये पञ्च प्रयाग उत्तराखण्ड की मुख्य नदियों के संगम पर हैं। पौराणिक मान्यताओं के अनुसार इन नदियों का संगम बहुत ही पवित्र माना गया है। इन पञ्च प्रयागों का पवित्र जल एक साथ अलकनन्दा और भागीरथी का जल श्रीराम की तपःस्थली देवप्रयाग में मिलता है। मुख्य रूप से देवप्रयाग में अलकनन्दा और भागीरथी का संगम होता है और यही से ये संगम गंगा बन कर आगे प्रवाहित होती हुई इन पञ्च प्रयागों का पृथक् - पृथक् वर्णन किया जा रहा है।

1. विष्णु प्रयाग, अलकनन्दा और विष्णु गंगा नदी का मिलन स्थल

देवभूमि के पञ्च प्रयागों में अन्तिम प्रयाग विष्णु प्रयाग है। यहाँ से बद्रीनाथ धाम की दूरी 32 किमी. शेष रह जाती है। यहाँ पर अलकनन्दा और विष्णुगंगा नदी का मिलन होता है। पौराणिक मान्यता के अनुसार इसी स्थान पर नारदमुनिजी ने भगवान् विष्णुजी की तपस्या की थी। इस मन्दिर का निर्माण इंदौर की महारानी अहिल्याबाई ने करवाया था। स्कंदपुराण में इस तीर्थ का वर्णन विस्तार से आया है। यहाँ विष्णुगंगा एवं अलकनन्दा में पाँच-पाँच कुण्ड का वर्णन आया है।
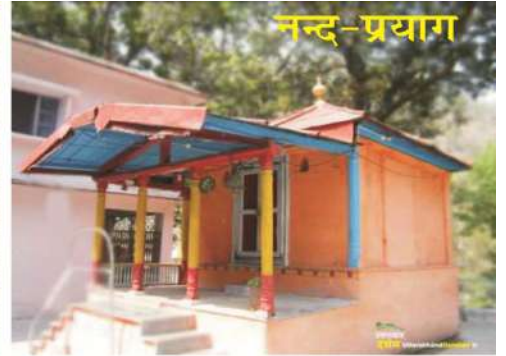
2. रुद्र प्रयाग, मन्दाकिनी और अलकनन्दा नदी का मिलन-स्थल

मन्दाकिनी और अलकनन्दा नदियों के संगम पर रुद्र प्रयाग स्थित है। संगम स्थल के समीप चामुंडादेवी व रुद्रनाथ मन्दिर दर्शनीय है। यह स्थान बद्रीनाथ मोटर मार्ग पर स्थित है। पौराणिक मान्यता है कि इस स्थान पर देवर्षि नारद ने भगवान् शंकर से गान्धर्व शास्त्र का ज्ञान प्राप्त किया था। यहीं पर भगवान् रुद्र ने नारदजी को वीणा प्रदान की थी। यहाँ भोलेशंकर रुद्रेश्वर नाम से प्रख्यात हैं।
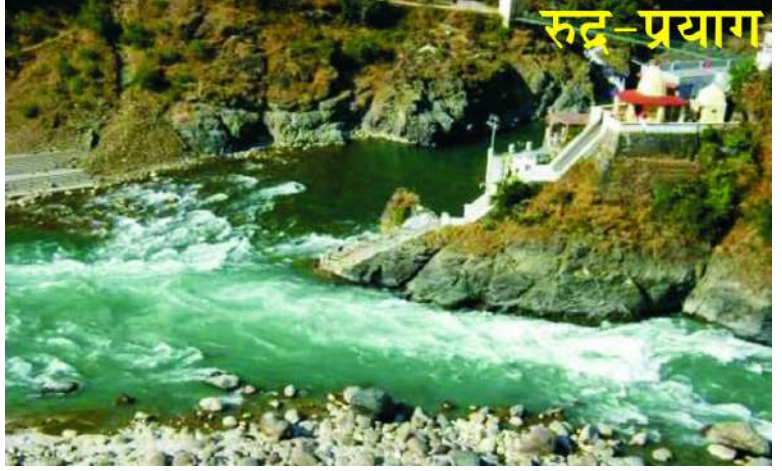
3. कर्णप्रयाग, अलकनन्दा तथा पिण्डर नदियों का मिलन स्थल

उत्तराखण्ड राज्य के अन्तर्गत चमोली जिले का एक हिस्सा। यहाँ अलकनन्दा तथा पिण्डर नदियों का संगमस्थल है। पिण्डर का एक नाम कर्ण गंगा भी है, जिसके कारण इस तीर्थ का नाम कर्णप्रयाग पड़ा। यहाँ पर उमामन्दिर और कर्ण मन्दिर दर्शनीय हैं। यही पर महादानी कर्ण ने सूर्य भगवान् की आराधना की थी और अभेद्य कवच कुण्डलों को प्राप्त किया था। किंवदती है कि कर्ण की तपस्थली होने के कारण ही इस स्थान का नाम कर्णप्रयाग पड़ा।

4. नन्दप्रयाग, मन्दाकिनी तथा अलकनन्दा नदी का मिलनस्थल

कर्णप्रयाग से उत्तर में बद्रीनाथ मोटर मार्ग पर 21 कि मी, आगे मंदाकिनी और अलकनन्दा का पावन संगम स्थल है। पौराणिक कथा के अनुसार यहाँ पर नंद महाराज ने भगवान् नारायण की प्रसन्नता और उन्हें पुत्र रूप में प्राप्त करने के लिए तप किया था। यहाँ पर नन्दादेवी के भव्य मन्दिर है, नन्दा का मन्दिर, नंद की तपस्थली एवं मन्दाकिनी का संगम आदि योगों के कारण इस स्थान का नाम नंदप्रयाग पड़ा।

5. देवप्रयाग, अलकनन्दा तथा भागीरथी नदी का मिलनस्थल

देवप्रयाग भारत के उत्तराखण्ड राज्य में स्थित एक नगर एवं प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। इस स्थान पर अलकनन्दा तया भागीरथी नदी का संगम होता है। इसी संगम स्थल के बाद इस नदी को पहली बार गङ्गा के नाम से जाना जाता है। देवप्रयाग की ऋषिकेश से सड़क मार्ग की दूरी 7 किमी. है। देवप्रयाग में श्रीरघुनाथ मन्दिर दर्शनीय है। पौराणिक कथा के अनुसार यह स्थान हनुमानजी की तपस्या स्थली रही है।

इस स्थान (देवप्रयाग) की मुख्य विशेषता यह है कि यहाँ पर स्व. आचार्य प० चक्रधर जोशी, ज्योतिर्विद एवं खगोलशास्त्री ने 1940-46 ई. के मध्य नक्षत्र वेधशाला की स्थापना की थी। यह वेधशाला दशरथांचल नामक एक निकटस्थ पर्वत पर स्थित है। इस वेधशाला में दो बड़ी दूरबीनों के अतिरिक्त सूर्य घड़ी, जलघड़ी, ध्रुव घड़ी तथा कई प्राचीन पुस्तकें व पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध है। वर्तमान में इनके पुत्र द्वारा समस्त वस्तुएँ सुरक्षित रखी गयीं हैं।

उत्तराखण्ड का लोकपर्व- गंगादशहरा

मुख्यत: सभी स्थानों के लोकपर्व अपनी-अपनी विशेषता लिए हुए रहते हैं। कुमाऊँ (उत्तराखण्ड का एक क्षेत्रों में इस पर्व के दिन पुरोहितों द्वारा निर्मित एक 'द्वारपत्र' जो कि वज्र निवारक मन्त्र के साथ अंकित रहता है, को कुल पुरोहित द्वारा अपने-अपने यजमानों को सप्रेम भेंट किया जाता है। द्वारपत्र' एक सफेद वर्गाकार कागज में विभिन्न रंगों का प्रयोग करते हुए वर्ग के अंदर शिव, गणेश, दुर्गा, सरस्वती, गंगा आदि का चित्र बनाकर उसके चारों ओर एक एक वृत्तीय या बहुवृत्तीय कमलदलों का अंकन किया जाता है। जिसमें लाल, पीला हरा रंग भरे जाते है। वृत्त के बाहर पञ्च ऋषियों के नाम के साथ यह श्लोक लिखा जाता है-

अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च वैशम्पायन एव च। जैमिनिश्च सुमन्तुश्च पञ्चैते वज्रवारका:॥
मुनेः कल्याणमित्रस्य जैमिनेश्चानु कीर्तनात्। विद्युदग्निभयं नास्ति लिखिते च गृहोदरे॥
यत्रानुपायी भगवान् हृदयास्ते हरिरीश्वरः। भङ्गो भवति वज्रस्य तत्र शूलस्य का कथा॥

इस दशहरा द्वार-पत्र को लगाने के पीछे प्राचीन समय से यह मान्यता चली आ रही है कि भवन पर वज्रपात, बिजली आदि प्राकृतिक प्रकोपों का विनाशकारी प्रभाव नहीं पड़ता है। प्रायः वर्षाकाल में पर्वतीय क्षेत्रों में वज्रपात की अनेक घटनाएँ होती रहती है, जिसके निवारण के लिये इस रूप में इस पर्व को मनाया जाता है। ऐसी लोकपरम्परा कुमाऊं के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं है।

पञ्चकेदार का माहात्म्य

हिमालय से प्रवाहित होने वाली गंगा ने अपने आस-पास की कई सहायक नदियों को भी जोड़ा है। इन नदियों के स्थलों पर स्थापित पौराणिक मन्दिर अपनी कुछ विशेषता लिए हुए हैं। पञ्च प्रयाग की भांति पञ्चकेदार एवं पञ्चबद्री के स्थानों का भी विशेष महत्व है। पञ्च केदार में केदारनाथ, मदमहेश्वर, तुंगनाथ, सहनाथ और कल्पेश्वर के शिव मन्दिर आते पञ्चबद्री में ध्यानबद्री, वृद्धबद्री, योगबद्री, भविष्यबद्री एवं बद्रीनाथ धाम आते हैं। इन स्थानों का संक्षिप्त विवरण दिया जाना आध्यात्मिक एवं पर्यटन की दृष्टिकोण से आवश्यक प्रतीत होता है।

1. केदारनाथ, आदि गुरु शंकराचार्य की साधना स्थली

समुद्रतल से 3584 मीटर की ऊँचाई पर स्थित यह स्थल शिव के धाम नाम से विख्यात है। शिव के 12 ज्योतिर्लिंग में से एकधाम यह घाम भी है। "केदारनाथ एक तीर्थ भी है, जो उत्तराखण्ड के शैव तीर्थों में यह अत्यन्त पवित्र माना गया है। इसके लिए यात्रा प्रारम्भ करते मात्र से सब पापों का क्षय हो जाता है।

हठयोग में भ्रूमध्य के स्थान विशेष को केदार कहा गया है।[4]

कालपाशमहाबन्धविमोचनविचक्षण:। त्रिवेणीसङ्गमं धत्ते केदारं प्रापयेन्मन:।।[5]

शैवमत की व्यवस्था के अन्तर्गत प्रारम्भिक पाँच मठ मुख्य थे इनमें केदारनाथ उत्तराखण्ड का स्थान प्रथम है। केदारेश्वर ज्योतिर्लिंग के प्राकट्य एवं माहात्म्य का वर्णन श्रीशिवपुराण में इस प्रकार है-

ताभ्यां च पूजितश्चैव सर्वदुःखभयापहः। लोकानामुपकारार्थं भक्तानां दर्शनाय वै।।[6]

सम्पूर्ण संकट तथा भय को दूर करने वाले शिवजी लोक का कल्याण करने के लिये एवं भक्तों को दर्शन देने के लिये

[4] राजवली पाण्डेय (डा.), 1988 (द्वितीय संस्करण), हिन्दू धर्मकोश, उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
[5] हठयोग दीपिका (3.24) 6. श्रीशिवपुराण (कोटिरुद्रसंहिता), 19.8, गीताप्रेस गोरखपुर सं. 2076.
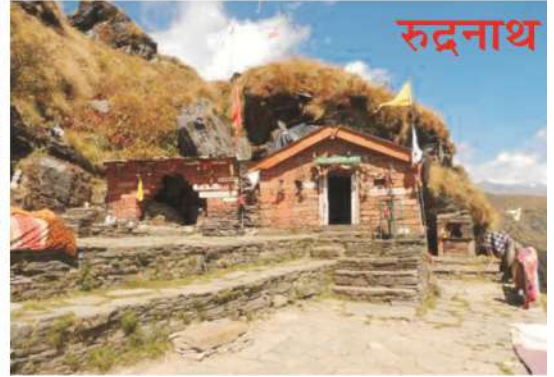
वहाँ केदारेश्वर नामसे स्वयं स्थित हो गये। वे दर्शन तथा पूजन करने से अपने भक्तों का मनोरथ पूर्ण करते हैं।

स्वयं स्थितस्तदा शम्भुः केदारेश्वरसंज्ञकः। भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं दर्शनादर्चनादपि।।[7]

शिवपुराण में यह उल्लेख है कि पाण्डवों को देखकर शिवजी ने महिष का रूप धारण कर लिया था और जब उन पाण्डवों ने महिषरूपधारी शिव को पकड़ लिया, तब उन पाण्डवों ने शिवजी से प्रार्थना कर वहीं पर विराजमान होने का अनुरोध किया। सदाशिव उसी रूप में वहाँ विराजमान रहते हैं-

यो वै हि पाण्डवान्दृष्ट्वा माहिषं रुपमास्थितः। मायामास्थाय तत्रैव पलायनपरोऽभवत्।।
धृतश्च पाण्डवैस्तत्र ह्यवाङ्मुखतया स्थितः। पुच्छं चैव घृतं तैस्तु प्रर्थितश्च व पुनः पुनः।।[8]

2. मदमहेश्वर

मदमहेश्वर, पञ्चकेदार के अन्तर्गत द्वितीय केदार माना जाता है। मदमहेश्वर मन्दिर में भगवान् शिव के नाबि की पूजा की जाती है। मदमहेश्वर स्थान समुद्रतल से 3497 मी. की ऊँचाई पर स्थित है। यह स्थान उत्तराखण्ड राज्य के सरप्रयाग जिले में स्थित है। शीतकाल में मन्दिर के कपाट बन्द होने पर मदमहेश्वर की पूजा ऊखीमठ में की जाती है।

3. तुंगनाथ, रावण की तपस्या स्थली

तुंगनाथ, तृतीय केदार है। तुंगनाथ में भगवान् शिव की भुजाओं की विशेष पूजा की जाती है, क्योंकि इस यान पर

7. श्रीशिवपुराण (कोटिरुद्रसंहिता), 19.9, गीताप्रेस गोरखपुर सं. 2076.
8. श्रीशिवपुराण (कोटिरुद्र संहिता), 19.13-14, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2076.

शिवजी भुजा (बाहु) के रूप में विराजमान हैं। यह स्थान भी रुद्रप्रयाग जिले में स्थित है। मन्दिर के समीप ही एक रावण शिला है, कहा जाता कि यहीं पर रावण ने भगवान् शिव की आराधना की थी। शीतकाल में मन्दिर के कपाट बन्द हो जाने पर तुंगनाथ की पूजा मंकूमठ में होती है।

4. रुद्रनाथ

रुद्रनाथ चतुर्थ केदार में से एक है। यह समुद्र तल से 3559 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। रुद्रनाथ मन्दिर गोपेश्वर चमोली से 18 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। इस मन्दिर में भगवान् शिव के मुख की पूजा होती है। रुद्रनाथ से द्रोणगिरि, चौखम्भा, नन्दादेवी आदि पर्वत शिखर दिखाई देते हैं। शीतकाल में मन्दिर के कपाट बन्द हो जाने पर रुद्रनाथ की पूजा गोपेश्वर मन्दिर में होती है।

5. कल्पेश्वर

कल्पेश्वर पाँचवा केदार कहलाता है। कल्पेश्वर में भगवान् शिव की जंघाओं की पूजा होती है। यह स्थान समुद्र तल से 2134 मीटर की ऊँचाई पर स्थित है। कल्पेश्वर मन्दिर जिला चमोली (उत्तराखण्ड) में पड़ता है। इस मन्दिर में वर्षभर पूजा होती है।

पञ्चबद्री का माहात्म्य

पञ्चबद्री उत्तराखण्ड में स्थित, हिंदू धर्म के अनुयायियोंके लिए महत्त्वपूर्ण तीर्थस्थल है। बद्रीनाथ धाम पञ्चबद्री में से ही एक है। इन मन्दिर की यह विशेषता है कि इनमें विष्णु भगवान् के अलग-अलग रूपों की मूर्तियाँ स्थापित हैं। यह पाँचो मन्दिर बद्रीनाथ धाम के क्षेत्र से लेकर नंदप्रयाग के बीच में स्थित हैं।

1. बद्रीनाथ, महर्षि वेदव्यास की तपस्यास्थली

हिन्दू धर्म के सबसे प्राचीन तीर्थ स्थलों में से एक स्थल,जो भगवान् विष्णुजी को समर्पित है। यह माना जाता है कि यहाँ स्थित वर्तमान मन्दिर की स्थापना आठवीं शताब्दी मे आदि गुरु शंकराचार्य ने की थी। बद्रीनाथ धाम को विष्णु भगवान् का वैकुण्ठ धाम भी कहा जाता है। यह मन्दिर हिमालय पर्वत की शृंखला में नर और नारायण नाम के दो पर्वतों के मध्य स्थित है। समुद्र सतह से इस स्थान की ऊँचाई 3133 मीटर है।

यह माना जाता है कि महर्षि वेदव्यासजी ने यहीं पर महाभारत और श्रीमद्भागवत गीता-जैसे महान ग्रन्थों की रचना की थी। यह स्थान देवर्षि नारद जी की भी तपस्या स्थली रही है। बदीनाथ धाम के कपाट वर्ष में छह माह बन्द रहते हैं। सामान्यतः मई माह में ये कपाट दर्शनार्थ खुल जाते हैं। यहाँ शीत के कारण अलकनन्दा में स्नान करना अत्यन्त कठिन है। अलकनन्दा के तो दर्शन ही किये जा सकते हैं। यानी तप्तकुण्ड में स्नान करते हैं। वनतुलसी की माला, चने की कच्ची दाल, गिरी का गोला और मिश्री आदि का प्रसाद चढ़ाया जाता है। बद्रीनाथ की मूर्ति शालग्राम शिला से बनी हुई, चतुर्भुज ध्यानमुद्रा में है। कहा जाता है कि यह मूर्ति देवताओं ने नारदकुण्ड से निकालकर स्थापित की थी। सिद्ध, ऋषि, मुनि इसके प्रधान अर्चक थे। जब बौद्धों का प्राबल्य हुआ तब उन्होंने इसे बुद्ध की मूर्ति मानकर पूजा आरम्भ की। शङ्कराचार्य की
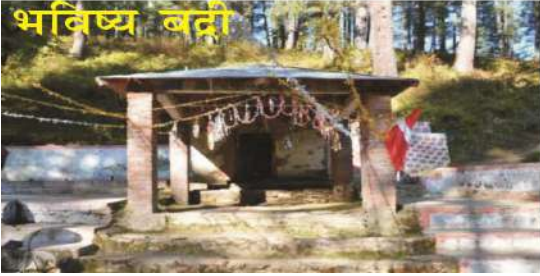
प्रचारयात्रा के समय बौद्ध तिब्बत भागते हुए मूर्ति को अलकनन्दा में फेंक गये। शंकराचार्य ने अलकनन्दा से पुनः बाहर निकालकर उसकी स्थापना की, तदनन्तर पूर्ति पुनः स्थानान्तरित हो गयी और तीसरी बार तप्तकुण्ड से निकालकर रामानुजाचार्य ने इसकी स्थापना की।[9]

2. योगध्यान बद्री पाण्डवों की तपस्या-स्थली

यह मन्दिर चमोली जिले में अलकनन्दा नदी के किनारे गोविन्द्र घाट के निकट स्थित है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई 1920 मीटर है। यह जिस स्थान पर स्थित है, उसे पांडुकेसर कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि इसी स्थान पर पांडवों का जन्म हुआ था और यहाँ पर जो भूर्ति स्थापित है उसकी स्थापना पांडवों के पिता पांडु ने की था। इस मन्दिर में स्थापित विष्णु भगवान् की मूर्ति ध्यानमुद्रा में है। इसीलिए इस मन्दिर को योगध्यान बद्री के रूप में आना जाता है।

3. भविष्य बद्री, आदि शंकराचार्य की साधना स्थली

इस मन्दिर का निर्माण आदि शंकराचार्य ने किया था। यह मदिर समुद्र तल से 2744 मी. पर स्थित है। जो जोशीमठ से लगभग 17 कि.मी. की दूरी पर स्थित है। ऐसा माना जाता है कि भविष्य में वस्तुप्रयाग के पास जय और विजय पहाड़ गिर जाएँगे, जिस कारण बदीनाथ धाम का मार्ग बहुत ही दुर्गम हो जायेगा, जिसके कारण बद्रीनाथ का फिर से प्रत्यावर्तन होगा और भविष्य बद्री में बदीनाथ की पूजा की जायेगी।

4. वृद्ध बद्रीनाथ, नारद मुनि की तपस्या-स्थली

वृद्धबद्री मन्दिर जोशीमठ से 7 कि.मी. दूरी पर स्थित है। यहाँ भगवान् विष्णु की पूजा एक वृद्ध व्यक्ति के रूप में की जाती है। भगवान्

9. राजबली पाण्डेय (डा.), हिन्दू धर्मकोश, 1988, द्वितीय संस्करण, उत्तर-प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, पृ. 436.

विष्णु के इस रूप के सम्बन्ध में यह कथा प्रचलित है कि यहाँ पर नारद मुनि को भगवान् विष्णु ने एक वृद्ध व्यक्ति के रूप में दर्शन दिये थे। यह मन्दिर वर्ष भर खुला रहता है।

5. आदिबद्री, अति दर्शनीय एवं महत्त्वपूर्ण स्थल

इस मन्दिर का प्राचीन नाम 'नारायण मठ' था। यह कर्णप्रयाग से लगभग 16 किमी की दूरी पर स्थित है। यहाँ 16 मन्दिर का एक समूह है, जिसमें से 14 मन्दिर आज मी यथावत् सुरक्षित हैं। इन मन्दिर की सुरक्षा एवं संरक्षण की जिम्मेदारी भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग को दी गयी कुछ मान्यताओं के अनुसार आदि गुरु शंकराचार्य ने इन मन्दिर का निर्माण आठवीं सदी में किया था, जबकि भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग का मानना है कि आदिबद्री मन्दिर समूह का निर्माण आठवीं से ग्यारहवीं सदी के बीच कत्यूरी वंश के राजाओं ने करबया था। आदि बड़ी पञ्चबद्री का ही एक भाग है। मान्यता है कि भगवान् विष्णु प्रथम तीन युगों (सत्ययुग, त्रेता तथा द्वापर) तक आदि बद्री मन्दिर में ही रहे और कलियुग में वे बड़ीनाथ मन्दिर चले गए और जब कलियुग समाप्त हो जाएगा तब वे भविष्य बड़ी में आ जायेंगे।

उत्तराखण्ड का पवित्र स्थल हरिद्वार

हरिद्वार, उत्तराखण्ड राज्य का एक जिला तथा हिन्दुओं का प्रमुख तीर्थ है। समुद्र सतह से 3139 मीटर की ऊँचाई पर स्थित अपने स्रोत गोमुखी-गंगोत्री हिमखण्ड से 253 किमी. की यात्रा करके गंगा नदी हरिद्वार में मैदानी क्षेत्र में प्रवेश करती है। इसलिए हरिद्वार को गंगाद्वार के नाम से भी जाना जाता है। हरिद्वार का अर्थ हरि (ईश्वर)का द्वार। परवर्ती हिंदू धार्मिक कथाओं के अनुसार, हरिद्वार वह स्थान है, जहाँ अमृत की कुछ बूंदें घड़े से गिर गयी थी, जब धन्वन्तरि उस घड़े को समुद्र मंथन के बाद ले जा रहे थे। उल्लेखनीय है कि अर्द्ध कुम्भ या महाकुम्भ के सम्बद्ध में किसी पुराण में कोई उल्लेख नहीं मिलता है। मान्यताओं के अनुसार जहाँ-जहाँ अमृत की बूंदें गिरी थी, यथा - उज्जैन, हरिद्वार, नासिक ओर प्रयाग। इन चारों स्थानों में बारी-बारी से हर 12 वें वर्ष महाकुम्भ का आयोजन होता है।

एक मान्यता के अनुसार वह स्थान जहाँ पर अमृत की बूंदें गिरी थी उसे "हर की पौड़ी" कहा जाता है। इसी स्थान को ब्रह्मकुण्ड भी माना जाता है। 'हर की पौड़ी' हरिद्वार का सबसे पवित्र घाट माना जाता है और पूरे भारत के भक्तों एवं तीर्थयात्रियों के झुण्ड त्यौहारों या पवित्र दिवसों के अवसर पर यहाँ स्नान करने आते हैं। यहाँ स्नान करना मोक्ष प्राप्त करवाने वाला माना जाता है। यहाँ वर्षभर स्नान करने के लिए श्रद्धालु आते रहते हैं।

ऋषियों की कर्मभूमि ऋषिकेश

ऋषिकेश, हरिद्वार से मात्र 24 किमी की दूरी पर स्थित पर्यटनस्थल है। यह स्थल योगनगरी के नाम से आधिक प्रचलित है। विदेशी पर्यटकों की संख्या यहाँ अधिक दिखाई देती है। हिमालय की तराई पर स्थित यह क्षेत्र तीन ओर से हिमालय से घिरा हुआ है, इसके बीच से गंगा की निर्मल धारा उद्विग्न मन को शान्त करने के लिए पर्याप्त है। ऋषिकेश का शांत वातावरण कई विख्यात आश्रमों का केन्द्र है। ऋषिकेश को केदारनाथ बद्रीनाथ, गंगोत्री और यमुनोत्री का प्रवेश द्वार भी कहा जाता है। ऋषिकेश से सम्बन्धित अनेक धार्मिक कथा प्रचलित है। कहा जाता है कि समुद्र मन्थन के दौरान निकला विष शिवजी ने इसी स्थान पर पिया था, विष पीने के बाद उनका गला नीला पड़ गया और उन्हें नीलकण्ठ के नाम से जाना गया ।

नीलकठेश्वर‘ नाम से यहाँ प्राचीन शिव मन्दिर है।

एक अन्य अनुश्रुति के अनुसार मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् राम ने वनवास अवधि में यहाँ के जंगलों में अपना समय व्यतीत किया था। पूर्व में रस्सी से बना लक्ष्मण झूला इसका प्रमाण माना जाता है। कहा जाता है कि ऋषि रैभ्य ने यहाँ ईश्वर के दर्शन हेतु कठोर तपस्या की थी उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर भगवान् हृषीकेश के रूप में प्रकट हुए। तबसे यह स्थान ऋषिकेश के नाम से जाना जाता है।

उत्तराखण्ड का इतिहास

उत्तराखण्ड पौराणिक नाम है। उत्तराखण्ड का शाब्दिक अर्थ है, - उत्तरी भूभाग। इस नाम का उल्लेख प्रारम्भिक हिन्दू ग्रन्थों में मिलता है, यहाँ का विस्तृत वर्णन स्कन्दपुराण के दो खण्डों, केदारखण्ड (वर्तमान गढवाल) और मानसखण्ड (वर्तमान कुमाँऊ) के रूप में मिलता है। यह क्षेत्र देवभूमि के नाम से प्रसिद्ध है, क्योंकि यह समग्र क्षेत्र धर्ममय और देवशक्तियों की क्रीड़ास्थली रही है। अनेकों ऋषि-मुनियों ने यहाँ जाकर आध्यात्मिक उर्जा प्राप्त की। निसंदेह उत्तराखण्ड की भूमि, प्राणदायिनी विशाल नदियों एवं दीर्घ वनों की सौन्दर्य शोभा एवं गरिमा सभी लोगों के मन को मुग्ध कर लेती है और यह सोचने को प्रेरित करती है कि वे अपने जीवन के व्यस्त क्षणों से कुछ पल निकाल कर, यहाँ के तीर्थस्थलों का दर्शन कर सौभाग्यशाली बनें। स्वाध्याय एवं अनन्त शान्ति के लिए उत्तराखण्ड आकर तीर्थस्थलों का दर्शन करें।

***

गर्म पानी के कुण्ड, राजगीर

वर्तमान में राजगीर में गर्मजल के 22 कुण्ड हैं जो ब्रह्मकुण्ड, सूर्यकुण्ड, सप्तधारा, अनंत कुण्ड, व्यास कुण्ड, मार्कण्डेय कुण्ड, अग्निधारा कुण्ड, दुःखहरणी कुण्ड, वैतरणी कुण्ड, शालिग्राम कुण्ड, काशी कुण्ड, सरस्वती कुण्ड, गोदावरी कुण्ड, गंगा-यमुना कुण्ड, ब्रह्मकुण्ड, सूर्यकुण्ड, सप्तधारा, नानक कुण्ड, शृंगीऋषि कुण्ड (मखदुम कुण्ड) के नाम से जाने जाते हैं। जिनमें राम-लक्ष्मण कुण्ड, सीता-कुण्ड, भरत-कुण्ड, अहल्या-कुण्ड , रामायण की कथा से जुड़े हुए हैं। मलमास मेला (एक माह चलने वाले) के अवसर पर आये श्रद्धालु हजारों की संख्या में स्नान करते हैं। आस्था है कि इस माह में यहाँ स्नान से लोग पापमुक्त व रोगमुक्त हो जाते है। मलमास मेला हरेक तीसरे वर्ष पर लगता है। मलमास का अर्थ वर्ष में एक माह से अधिक होना होता है। ऋग्वेद में छह ऋतुओं का उल्लेख है। सातवाँ ऋतु मलमास माना गया है। धार्मिक आस्था है कि अग्नि व वायु-पुराण में वर्णित तैंतीस कोटि देवी-देवताओं का निवास इस माह यहाँ होता है। इसके अलावा हरेक वर्ष 14 जनवरी को राजगीर में लगनेवाले मकर संक्रान्ति मेला का भी विशेष धार्मिक महत्त्व है। इस दिन यहाँ सैकड़ों धर्मावलम्बी गर्म जल के कुण्ड में स्नान कर कल्याण हेतु पूजा अर्चना करते हैं। गन्धक मिश्रित होने के कारण इन कुण्ड में स्नान करने से कई प्रकार की बीमारियां ठीक हो जाती हैं। कहा जाता है कि इसके नीचे सल्फर (गन्धक) का पहाड़ है। राजगीर में गर्म जल के कुण्ड धर्मावलंबियों, पर्यटकों के लिये सर्वाधिक आकर्षण का केन्द्र हैं। इसके मुख्य उद्गम स्थल हैं। विपुलाचल और वैभारगिरि। वैभारगिरि के अंचल में तो गरम पानी का खजाना है।

साभार : श्री रवि संगम, ‘बिहार हिन्दू सर्किट’ पुस्तक से

श्री रवि संगम

बिहार के कुछ जलप्रपात एवं प्राकृतिक जलाशय

हमारा बिहार जल के मामले में धनी है। यहाँ अनेक गंगा, कोशी, गण्डक आदि अनेक विशाल नदियाँ बहती हैं। साथ ही, नदियों की धारा में आये परिवर्तनों से प्राकृतिक झील भी काफी संख्या में है, जो न केवल जल भण्डारण की दृष्टि से अपितु पर्यटन की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण हैं। दक्षिण बिहार में पहाड़ियों से गिरते जलप्रपात भी प्राकृतिक जलस्रोत के रूप में बिहार के लिए वरदान है। धार्मिक आस्था से जुड़े हुए इन प्राकृतिक जल-स्रोतों के स्थल को पर्यटन की दृष्टि से विकसित किया गया है। यहाँ पर ऐसे ही कुछ प्राकृतिक जल-स्रोतों का उल्लेख किया जा रहा है।

बिहार की अकूत जल संपदा अभूतपूर्व है। इनके विकास व दोहन के लिए सबसे पहले इसे इंफार्मेशन टेक्नालाजी से जोड़ना होगा। इसका बृहत् डाटाबेस तैयार करना होगा। क्योंकि इनमें से कुछ ही विकसित हैं व ज्ञात हैं। बाकि सभी या तो उपेक्षित हैं, जिनका विकास नहीं हुआ है या अज्ञात हैं जिन्हे इंफार्मेशन टेक्नलाजी से अब तक नहीं जोडा गया है– जिनमें सभी जलप्रपात, झील, वेटलैंड, चौर, सरोवर, तालाब, कुण्ड, नदियों को जोड़ना होगा।

इनमें कुछ स्थलों के डाटा कलेक्शन व शूटिंग के लिए 40-70 कि.मी. चलना पड़ा, क्योंकि नक्सल इलाके में सड़क मार्ग से यह सम्भव नहीं था . इसमें प्रत्येक स्थलों का दुर्लभ फोटोग्राफ भी दिया गया है। जल, जीवन व हरियाली के संक्षिप्त डाटा– बेस बनाने का सम्भवतः यह प्रथम प्रयास है जिसे धर्मायण ई-पत्रिका के लिए उपलब्ध कराया जा रहा है। इस दिशा में यह एक सार्थक व अपूर्ण प्रयास है।

ककोलत जलप्रपात, नवादा

लोकेशन : पटना से 140 कि.मी. दूर, पटना-रांची मुख्य सड़क मार्ग से 14 कि.मी. पर, नवादा-गोविंदपुर मार्ग में थाली से 3 कि.मी. दक्षिण, गोविंदपुर प्रखंड के एकतारा जंगल व मनोरम पहाड़ियों के बीच स्थित है। यह गया व बिहारशरीफ के निकट, नवादा जिला मुख्यालय से 33 कि.मी. दक्षिण-पूरब में स्थित है.

महत्व : यह प्रसिद्ध पर्यटक स्थल है। ककोलत जलप्रपात हजारीबाग की पर्वत श्रेणी से बहती हुई लोहबर पहाड़ी नदी लोहदंड पहाड़ी से 80 फीट की ऊँचाई से गिरकर गहरे जलाशय व धारा का रूप लेती है। यह 160 फीट की ऊँचाई पर स्थित है। इस जलप्रपात का प्रथम दर्शन फ्रांसिस बुकानन ने वर्ष 1811 में किया था। इनकी पुस्तक के अनुसार, जलप्रपात के निकट काफी गहरी खाई थी, जिसके कारण एक अंग्रेज अधिकारी के आदेश पर स्नान के पूर्व एक पत्थर डालने का नियम बनाया गया था। ताकि किसी दुर्घटना से बचाव के लिए खाई को भरा जा सके। बाद में वर्ष 1994-95 में जिला प्रशासन द्वारा इस खाई को भरकर एक आकर्षक तालाब का रूप दिया गया। जलप्रपात के निकट पहुँचने के लिए सीढ़ियों का निर्माण भी किया गया है। बिहार के सभी जलप्रपातों में इनकी विशेषता है कि इसे (कृत्रिम रूप से घेरकर) पर्यटकों के सुरक्षित स्नान को ध्यान में रखकर

*बिहार पर्यटन-सूचना सामग्रियों के लेखक, भूतपूर्व पत्रकार, पटना

इसका विकास किया गया है। यहाँ गर्मी के दिनों में पहाड़ के भीतर से निकलने वाली जलधारा इतनी ठंढ़ी रहती है कि वहाँ भीषण गर्मी का बिल्कुल एहसास नहीं होता। इस पानी में बना खाना इतना स्वादिष्ट होता है कि पर्यटक इसे वर्षो याद रखते हैं। ककोलत के बारे में मान्यता है कि अपने वनवास के क्रम में महाभारत काल में पांडवों ने यहाँ एक ऋषि के श्राप से त्रेतायुग से सांप बने राजा निगास को मुक्ति दी थी। माना जाता है कि यहाँ जो भी नहाता है, उसे सर्पयोनि से मुक्ति मिल जाती है.

पटना-रांची सड़क मार्ग पर फतेहपुर मोड़ पर ‘ककोलत द्वार’ बनाया गया है, जिसपर इसका इतिहास अंकित हैं। प्राकृतिक सौंदर्य के अलावा ककोलत का पुरातात्विक महत्व भी है। ककोलत की पहाड़ियों में पाषाणकालीन उपकरण मिले हैं। कुछ लोगों की मान्यता है कि कभी यहाँ कोल जाति का निवास था। इसी कारण इसका नाम ककोलत पड़ा। ककोलत के निकट वन विभाग का रेस्ट हाउस व एकतारा में जिला परिषद् का डाकबंगला है।

अम्बाकोलवा जलप्रपात, नवादा

लोकेशन : जिले के कौआकोल प्रखंड से 2 कि-मी- की दूरी पर उत्तर में स्थित है।

महत्व : अम्बाकोलवा - प्रसिद्ध पिकनिक स्थल के रूप में प्रसिद्ध है। दो पहाड़ों के बीच से बहता जलप्रपात (झरना) - दूर-दूर से पर्यटकों को आकर्षित करता है। इस पर्वतमाला पर वन्य जीव भी देखे जा सकते हैं। जलप्रपात के निकट एक जगह नीली मिट्टी मिलती है जो साबुन का झाग पैदा करती है।

मछंदरा जलप्रपात, नवादा

लोकेशन : नवादा जिला के कौआकोल प्रखंड मुख्यालय से 6 कि-मी- उत्तर-पूरब में, पहाड़ियों के मध्य मछंदरा जलप्रपात स्थित है।

महत्व : यहाँ पर्वत के ऊंचे शिखर से जलधारा नीचे कुण्ड में गिरती है। ककोलत के तरह यहाँ भी 14 अप्रैल को मेला लगता है, जिसे ‘हदहदवा’ के नाम से जाना जाता है. मछंदरा जलप्रपात के निकट एक खंडहर का अवशेष है, जहाँ से प्राचीन ईंटे मिली हैं।

छपराकोल जलप्रपात, नवादा

लोकेशन : नवादा जिला मुख्यालय से 55 कि.मी. व गोविंदपुर प्रखंड मुख्यालय से 6 कि.मी. की दूरी पर पहाड़ की तलहटी में स्थित।

महत्व : छपराकोल गांव है- जहाँ एक मनोरम जलप्रपात है, जो दूर-दूर से पर्यटकों को आकर्षित करता है। जलप्रपात (झरना) के निकट ही एक चट्टान पर लालरंग की चित्रकारी-ज्यामितिक आकार की आकृति हैं। पहाड़ी के उपर भी प्राचीन अभिलेख उत्कीर्ण है।

सीताकुण्ड, रोहतास (सासाराम)

लोकेशन : कैमूर पहाड़ी की घाटियों में, जिला मुख्यालय रोहतास से 70 कि. मी. दूर, जिले के दक्षिणी कोने में चेनारी प्रखंड के अन्तम छोर पर, उगहनि पञ्चयत के गीता आश्रम से 30 कि. मी. सड़क मार्ग या 12 कि. मी. चढ़ाई (दो पर्वत शिखर के बाद) गुप्ताधाम स्थित है। सीताकुण्ड गुप्ताधाम से 1 कि. मी. दक्षिण में स्थित है।

महत्त्व : यह स्थल 'शीतलकुण्ड' के नाम से भी जाना जाता है. इस कुण्ड का आकार 5000 वर्गफीट के लगभग है। कुण्ड के बगल में 3000 फीट ऊंचे कैमूर पर्वत (कैमूर पर्वत शृंखला में से एक) से एक प्राकृतिक झरना गिरता है। यहाँ का दृश्य अलौकिक है। यह स्थान माता अंजनी का निवास स्थान व हनुमान के जन्मस्थान के रूप में भी जाना जाता है। मेला के अवसर पर बड़ी संख्या में महिलाएँ यहाँ स्नान कर गुफा मन्दिर में शिवलिंग की आराधना करती हैं. गुप्ताधाम मन्दिर परिसर 12.5 कट्ठा क्षेत्र में विस्तृत है. जिसमें गुफा मन्दिर के अलावा हनुमान मन्दिर, श्री शिवानंदजी महाराज का समाधिस्थल, शिवानंद आश्रम आदि प्रमुख है।

मंझर जलप्रपात, रोहतास (सासाराम)

लोकेशन : जिला मुख्यालय सासाराम से 10 कि. मी. पर, डेयरी आन सोल व सासाराम के बीच, कैमूर की पहाड़ियों में स्थित।

महत्त्व : बिहार के खूबसूरत जलप्रपातों में यह जलप्रपात शामिल है, जो दूर-दूर से पर्यटकों को आकर्षित करता है। सिख धर्मावलंबियों का यह प्रिय स्थल है। सिख आस्था के अनुसार श्रद्धालू अपने साथ पवित्र गुरु ग्रंथ साहिब लाकर यहाँ तीन दिन प्रवास करते हैं। हरेक वर्ष रक्षाबंधन के बाद, प्रथम रविवार को यहाँ विशाल मेला लगता है, जिसमें दूर-दूर से लोग आते हैं।

देवकुण्ड, औरंगाबाद

लोकेशन : औरंगाबाद व अरवल के सीमा पर स्थित, देव मन्दिर से 45 कि.मी. उत्तर, औरंगाबाद जिला मुख्यालय से राष्ट्रीय उच्च पथ 98 होते हुए दाउदनगर से हंसपुरा होती हुई, रायपुर बंधवा तक पक्की सड़क से थोड़ी दूर पर स्थित।

महत्त्व : यहाँ स्थित देवकुण्ड प्राचीन धार्मिक महत्त्व का स्थल है। आस्था है कि पौराणिक काल में यहाँ 'च्यवन ऋषि का आश्रम' था। इस स्थल पर भगवान् राम ने तीर्थयात्रा भ्रमण के क्रम में, पितरों को पिण्डदान करने के पूर्व, च्यवनाश्रम आकर, शिवलिंग की स्थापना की थी, जो कालांतर में 'दुग्धेश्वरनाथ महादेव' के नाम से जाना गया। वर्तमान में यहाँ 'दुग्धेश्वरनाथ महादेव मन्दिर' स्थापित है। यह देवकुण्ड से थोड़ी दूरी पर स्थित है। आस्था है कि इस स्थल से भीतर ही भीतर

राजगीर, बराबर, गुप्तेश्वर धाम व रोहतास किला तक पहुंचने के लिए सुरंगे थी। मठ में वर्तमान त्रिकोण हवनकुण्ड (तुलसी वेदिका) को सुरंग से संबद्ध माना जाता है। आश्विन व चैत्र नवरात्रें में यहाँ विशेष रूप से शक्ति की आराधना का महत्त्व है। फाल्गून व वैशाख की शिवरात्रि को लगनेवाले मेला में बड़ी संख्या में धर्मावलंबी आते हैं।

करकटगढ जलप्रपात, कैमूर

लोकेशन : कैमूर जिला मुख्यालय से उत्तर – पश्चिम, एन। एच। 2 के निकट, कर्मनाशा नदी के उपरी हिस्से में स्थित।

महत्व : 300 फुट चौडा और 100 फीट ऊंचा करकटगढ़ जलप्रपात का पौराणिक महत्व है। प्रकृति के सुरम्य वातावरण में मौजूद यह जलप्रपात सैलानियों के लिए आकर्षण का केन्द्र है। अलग–अलग मौसम में इसकी छटा अलग–अलग मनमोहक रूप में दिखाई पड़ती है। गर्मी के दिनों में इस जलप्रपात का विहंगम दृश्य नीचे कुण्ड में दिखता है।

करकटगढ़ जलप्रपात से अघौरा तक कर्मनाशा नदी लगभग 25 कि. मी. पहाडी क्षेत्र में फैली है। वर्ष 1979 में इस क्षेत्र को वन आश्रयणी के रूप में घोषित करते हुए कर्मनाशा नदी में बड़ी संख्या में मगरमच्छों के मिलने के कारण, उनको मारने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। इसके पूर्व वर्ष 1916 में यह स्थान तब चर्चा में आया, जब 75 मगरमच्छ कर्मनाशा नदी में दिखाई दिये थे। इस स्थान पर दो तालाब हैं। एक तालाब मगरमच्छों के रहने के लिए तथा दूसरा तालाब गर्भवती मादा मगरमच्छों के रहने के लिए सरकारी निर्णय विचाराधीन है। इस स्थल को मगरमच्छ संरक्षण शरणस्थली के रूप में विकसित करने की योजना है। मगरमच्छों के लिए दिसंबर माह प्रजनन के लिए होता है। ब्रिटिश काल में बिहार व उड़िसा प्रांत के शाहाबाद के गजेटियर एल.एस.एस. ओमैली ने भी इसे इस क्षेत्र में प्रकृति का सबसे खूबसूरत जलप्रपात बताया था।

बडकाटाली जलप्रपात, लखीसराय

लोकेशन : जिला के पीरी बाजार थाना क्षेत्र के बरियारपुर पञ्चयत में स्थित।

महत्त्व : टीला झरना के नाम से जाना जाने वाला यहाँ भूगर्भीय जल स्रोत है, जहाँ अनवरत रूप से औषधीय गुणों से लबरेज गुनगुना जल निकलता रहता है। चारो ओर पहाड़ों से घिरे इस झरना में पर्वत की दरारों एवं छिद्रों से जल रिसकर निकलता रहता है।

प्रकृति के इस अनुपम उपहार व नयनभिराम दृश्य को देखने के लिए बड़ी संख्या में पर्यटक यहाँ आते हैं। पर्यटन के दृष्टिकोण से भी यह अत्यन्त रमणीक स्थान है। आस्था है कि टाली झरना का जल मिनरल वाटर से कम नहीं है। इस जल का प्रयोग पेट सम्बन्ध बिमारियों के लिए विक्रय भी होता है।

वाल्मीकिनगर झील, पश्चिमी चंपारण

लोकेशन : जिला मुख्यालय बेतिया से 100 कि. मी. दूर उत्तर में, नेपाल सीमा के पास स्थित। बेतिया से बगहा तक रेलमार्ग से व वाल्मीकिनगर सड़क मार्ग से पहुंचा जा सकता है।

महत्त्व : भारतीय ऐतिहासिक परम्परा के प्रतीक महर्षि वाल्मीकि की कर्म व तपस्थली 'वाल्मीकिनगर' का पूरा भूभाग- चारो ओर से नदी, झील, झरनों एवं वन से भरा पूरा है। प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर यह क्षेत्र कभी पर्यटकों का प्रिय स्थान है। 1960-70 के दशक में वाल्मीकिनगर-बराज बनने, नेपाल नरेश द्वारा वहाँ बिखरी मूर्तियों को संग्रहित करने और हाल के वर्षों में यहाँ बिहार के एकमात्र बाघ परियोजना 'प्रोजेक्ट टाइगर' लागू होने के बावजूद बौद्धकालीन महत्व के इस संपूर्ण क्षेत्र में बिखरे पुरावशेषों, मूर्तियों व भवन स्थापत्य की महत्ता और ऐतिहासिकता को देखते हुए भी इस क्षेत्र का 'अति प्रमुख पर्यटन स्थल' के रूप में विकास नहीं हो पाया है। यह स्थान कभी अन्तर्राष्ट्रीय महत्व का स्थल रहा होगा। इस स्थल की तीन दिशाओं उत्तर, पूरब व पश्चिम में नदी के विस्तार और पश्चिम में नदी पार– हिमालय व नेपाल का तराई भाग शुरू होता है। प. चंपारण के रामपूरवा से 8 कि. मी. उत्तर, नेपाल का ठोरी से तिब्बत तक पहुंचने का मार्ग है। यह स्थान आज भी सामरिक व किलेबन्द की दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

सरैया झील, पश्चिमी चंपारण

लोकेशन : पश्चिम चंपारण के जिला मुख्यालय बेतिया से 7 कि. मी. दक्षिण-पश्चिम में बैरिया प्रखंड के निकट, उदयपुर वन्य अभयारण्य के बीच स्थित।

महत्त्व : 18 सौ एकड़ क्षेत्र में, घोड़े के नाल के आकार का विस्तृत विशाल जंगल- जिसे 'सरैया वन' के नाम से जाना जाता है। वाल्मीकि नेशनल पार्क स्थित उदयपुर वन के बीच में एक विशाल खूबसूरत झील है - जो प्रसिद्ध पिकनिक स्पॉट रहा है।

कभी इस झील की खासियत यह थी कि इसके चारो ओर सघन 'जामुन के पेड़ लगे हुए थे - जो चू-चू कर झील में गिरते थे- स्वास्थ्य लाभ के लिये लोग खरीदकर इसके जल का सेवन करते थे।

वाल्मीकि नेशनल पार्क व उदयपुर अभयारण्य, पश्चिमी चंपारण

नेपाल से सटे प. चंपारण स्थित वाल्मिीकि नेशनल पार्क लगभग 900 वर्ग कि.मी. क्षेत्र में फैला मनोरम दर्शनीय स्थल

है। पटना से 300 कि.मी. दूर यह नेशनल पार्क सवाना भूमि व दलदल का क्षेत्र है, जहाँ गैंडे, बाघो के अलावा चीतल, सांभर, तेंदुआ, नीलगाय बहुतायत में पाये जाते हैं- प्राकृतिक सौंदर्य के बीच यहाँ वन्यजीवों को देखने का अपना ही आनंद है। वर्ष 1978 में स्थापित वाल्मीकि वन्यजीव अभयारण्य के 464-60 वर्ग कि. मी. क्षेत्र में वर्ष 1990 में 419-18 वर्ग कि. मी. क्षेत्र और जोड़ा गया है। राज्य का यह सबसे आकर्षक व बड़ा वन्यजीव अभयारण्य है। इसे सन् 1989 में 'वाल्मीकि राष्ट्रीय उद्यान' घोषित किया गया- राज्य का यह पहला अभयारण्य है - जहाँ बाघो के संरक्षण हेतु 'बाघ परियोजना चलाई जा रही है। इसके अलावा यहाँ उदयपुर अभयारण्य भी है, जो अपेक्षाकृत छोटा अभयारण्य है जो 8-74 वर्ग कि-मी- क्षेत्र में फैला हुआ है।

काबर झील, बेगूसराय

लोकेशन : जिला मुख्यालय से 22 कि.मी. दूर, चेरिया बरियारपुर विधानसभा क्षेत्र अन्तर्गत, भवानीपुर – बखरी के बीच मझौंल स्थित। यह स्थान राजधानी पटना से 100 कि. मी. पूरब में स्थित है।

महत्व : काबर झील मीठे पानी का एक उथली झील है। 63.11 वर्ग कि. मी. (6311.2 हेक्टेयर) में फैले इस झील क्षेत्र को पक्षी विहार बनाने की धोषणा वर्ष 1989 में किया गया था। इस झील में कई चौरों के साथ बसाही व एकबा चौर शामिल हैं। शरद ऋतु में मध्य एशियाई देशों साइबेरिया, रूस, लद्दाख से हजारों कि. मी.की यात्रा कर, प्रति वर्ष ठंढ से बचने के लिए बड़ी संख्या में लंबे समय से प्रवासी पक्षियों का एक प्रमुख पसंदीदा स्थल रहा है।

इसे विश्व के महत्वपूर्ण वेटलैंड (पक्षी विहार) की श्रेणी में रखा गया है। 13 नवबंर 2020 में बिहार में पहली बार **रामसर साइट** का दर्जा दिया गया है। इसके साथ ही देश में रामसर का दर्जा पाने वाले पक्षी विहारों की संख्या – काबर झील को मिलाकर 39 हो गयी है। रामसर साइट में शामिल होने के कारण अब काबर झील को अन्तर्राष्टीय स्तर का दर्जा प्राप्त हो गया है। रामसर साइट का दर्जा मिलने से केन्द्र सरकार भी उसके रखरखाव का जिम्मा उठाती है। इसके अलावा अन्तर्राष्टीय संगठनों से भी मदद मिल सकती है। वर्ष 1971 में ईरान के रामसर शहर में पक्षी विहारों के संरक्षण को लेकर संधि हुई थी और इनके लिए मानक तय हुए थे। जिसमें खरा उतरने पर किसी पक्षी विहार को रामसर साइट का दर्जा दिया जाता है। रामसर साइट का दर्जा हासिल करने करने के लिए किसी पक्षी विहार को 9 मानको को पूरा करना होता है। इनमें साल में कम से कम 20 हजार पक्षियों का आगमन, प्रवासी पक्षियों का आना, संकटापन्न पक्षियों की मौजूदगी, मछली प्रजाति के जलचरों की उपस्थिति, जैव विविधता बनाये रखने वाले पक्षियों की मौजूदगी शामिल है। प्राकृतिक सौंदर्य के अलावा काबर झील का धार्मिक महत्व भी है। झील के मध्य बने एक विस्तृत टीले पर सिद्धपीठ माँ जयमंगला का मन्दिर स्थापित है।

खड़गपुर झील, मुंगेर

लोकेशन : जिला मुख्यालय मुंगेर से दक्षिण 58 कि. मी. दूर, मुख्य सड़क मार्ग पर खड़गपुर के विंध्य पर्वत शृंखला की गोद में स्थित।

महत्व : प्रसिद्ध भीमबाँध जलप्रपात के निकट स्थित खड़गपुर झील तीन ओर से पहाड़ियों से घिरा खूबसूरत हरी-भरी

घाटी है, जहाँ दो जलधाराएँ – उष्ण व शीतल जलप्रपात से आकर मिलती हैं और घने जंगल में जलकुंए का निर्माण करती हैं। खड़गपुर झील की जलधारा बडी संख्या में प्रवासी पक्षियों को आकर्षित करते हैं। इस हरा पहाड़ी क्षेत्र को वर्ष 1976 में वन्य प्राणी आश्रयणी घोषित किया गया था। इस क्षेत्र के महत्त्व को देखते हुए वर्ष 2019-20 में खड़गपुर झील का आधुनिकीकरण व सौंदर्यीकरण का कार्य शुरू किया गया था।

खड़गपुर एक छोटा नगर है, यहाँ स्थित दरभंगा महाराज द्वारा निर्मित झील, कई झरने व हरियाली देखने को मिलते हैं- 1. खड़गपुर झील से 2 कि। मी। पर पञ्चकुमारी पर्वत के निकट, एक खूबसुरत झरना है। 2. इस झरने से 5.5 कि. मी. दक्षिण-पश्चिम में करमंतरी गांव के निकट लक्ष्मीकुण्ड (गर्म कुण्ड) स्थित है। 3. खड़गपुर से पश्चिम रामेश्वर कुण्ड स्थित है।

सीतातीर्थ – माना जाता है कि माता सीता यहीं धरती में समायी थी। आनंद रामायण के अनुसार, राज्याभिषेक के बाद श्रीराम अपने तीर्थयात्रा के क्रम में गया के विष्णुपद आदि विभिन्न स्थानों पर पिंडदान करते हुए वहाँ से चलकर मुद्गल ऋषि के नवीन आश्रम पहुंचे, जहाँ गंगा उत्तरवाहिनी है। यह स्थान वर्तमान में मुंगेर में है, जो मुद्गल शब्द का अपभ्रंश है। यहाँ से आगे चलकर श्रीराम ने जान लिया कि इसी स्थल पर सीता भूमि में प्रवेश कर दिव्य रूप धारण करेंगी, माता सीता ने भी इसे जानकर अपने नाम से यहाँ सीतातीर्थ की स्थापना की। यह स्थान खडगपुर पहाड़ियों में है।

ऋषिकुण्ड, मुंगेर

लोकेशन : जिला मुख्यालय मुंगेर से दक्षिण-पूर्व में धरहरा से पूरब, इटवा व मिर्जाचक के मध्य में स्थित।

महत्व : इस स्थल की शृंगी ऋषि के तपस्थल के रूप में पहचान है। पर्वतों से घिरे, हरियाली के बीच स्थित इस खूबसुरत जलकुण्ड का नैसर्गिक सौंदर्य अनुपम है।

घोड़ाकटोरा ताल, नालन्दा

लोकेशन : घोडाकटोरा राजगीर से 3 कि.मी. दूर नालन्दा विश्वविद्यालय से उत्तर गिरियक नदी के तट पर स्थित। जिला मुख्यालय बिहारशरीफ से दक्षिण राष्ट्रीय उच्चमार्ग 31 पर है।

महत्त्व : घोडाकटोरा का विशेष महत्त्व प्राकृतिक सौंदर्य के स्थलों के रूप में भी है। राजगीर रोपवे से 6।5 कि।मी। दूर स्थित घोड़ाकटोरा तीन ओर से वादियों से घिरा, चारो ओर हरियाली ओर बीच में 1 कि।मी। में फैला खूबसूरत डैम, यह बिहार का पहला और एकलौता ईकोटूरिस्ट प्लेस है। यहाँ ठहरने की भी व्यवस्था है। डैम में सैर के लिए पैंडल बोट की व्यवस्था है। रोपवे के पास बने प्रवेश द्वार पर दिन में 8 बजे - 3 बजे तक इंट्री दी जाती है।

फुलवरिया झील, नवादा

लोकेशन : जिला मुख्यालय नवादा से 30 कि.मी. दक्षिण में रजौली अनुमंडल स्थित।

महत्त्व : वर्तमान में इस समय यह स्थल **फुलवरिया डैम** के रूप में विकसित है, जो ‘पिकनिक स्थल’ के रूप में जाना

जाता है। फुलवरिया डैम कई छोटे-छोटे पर्वतों से घिरा है। डैम स्थित झील में कई छोटे टापू हैं। यहाँ नौका-विहार की सुविधा भी उपलब्ध है। वर्ष 1979 में डैम का निमार्ण शुरू हुआ था, जो 30 जून 1985 को पूरा हुआ। झील का जलस्तर 561 फीट न्यूनतम मानक आंकलन है। रजौली अनुमंडल स्थित 'शृंगी ऋषि का पहाड़' पौराणिक महत्व का स्थल है। दो भागों में विभक्त इस पर्वत के बारे में आस्था है कि एक पर्वत पर शृंगी ऋषि रहा करते थे और दूसरे पर्वत पर अन्य ऋषि रहते थे।

गोगाबिल झील (पक्षी अभयारण्य), कटिहार

लोकेशन : जिला मुख्यालय कटिहार से दक्षिण, 20 कि. मी. की दूरी पर मनिहारी ब्लाक स्थित।

महत्व : करीब 217 एकड़ में फैली यह झील एक ओर गंगा नदी तो दूसरी ओर महानन्दा से घिरी है। यहाँ कई प्रजातियों के प्रवासी पक्षियों का आगमन प्रति वर्ष होता है। बड़ी संख्या में प्रवासी पक्षी यहाँ समुद्र की लंबी यात्रा करके पहुंचते हैं। यहाँ गोगा पक्षी अभयारण्य विकसित करने के तहत करीब 73।78 एकड़ सरकारी जमीन पर कंजर्वेशन रिजर्व बनाया गया है। जबकि जंगला टाल इंग्लिश के ग्रामीनों की 143 एकड़ भूमि पर गोगाबिल सामुदायिक पक्षी अभयारण्य घोषित किया गया है। साल में 4-6 माह तक यहाँ खेतों में पानी भरा रहने के कारण ग्रामिण एक ही फसल ले पाते हैं। इसके कारण वर्ष 2019 में 250 से अधिक ग्रामीणों ने अपनी जमीन गोगाबिल पक्षी अभयारण्य विकसित करने के लिए दी है। यह प्राचीन झील देशी ही नहीं विदेशी पक्षियों का आरामगाह बन चुका है। करीब 300 प्रजातियों के प्रवासी पक्षी हर साल यहाँ आते हैं। यह क्षेत्र 21 मार्च 1990 से 2000 तक निषिद्ध क्षेत्र रहा है।

बरैला झील, वैशाली

लोकेशन : जिला मुख्यालय वैशाली के पूर्व 60 कि। मी। दूर, महुआ अनुमंडल मुख्यालय से 20 कि. मी.दूर जंदाहा व पातेपुर प्रखंड तक स्थित।

महत्व : 36 वर्ग कि. मी. के क्षेत्र में विस्तृत बरैला झील – डॉ.सलीम अली जुब्बा सहनी पक्षी आश्रयणी के रूप में भी प्रसिद्ध है। जिला के जंदाहा प्रखंड के लोमा बिजरौली से शुरू होने वाला यह विशाल झील क्षेत्र पातेपुर प्रखंड के साथ साथ निकटवर्ती जिला समस्तीपुर जिले के ताजपुर, सरायगंज, पटोरी आदि कई प्रखंडो तक फैला है।

चमगादड के आकार का बरैला झील का वर्ष 1989 के आंकडों के अनुसार, झील

का सतही जल का विस्तार 8.3 वर्ग कि.मी. दलदली भूमि 3.23 वर्ग कि.मी. में तथा जलीय वनस्पति का विस्तार 3.6 वर्ग कि. मी. था। वर्ष 2005 में सतही जल का विस्तार घटकर 4.98 वर्ग कि. मी., दलदली भूमि 3.87 वर्ग कि.मी. एवं जलीय वनस्पति का विस्तार बढ़कर 6.26 वर्ग कि.मी. हो गया था। वर्ष 2014 में सतही जल मात्र 3.7 वर्ग कि.मी. तक रह गया था– जो बताता है कि गत 25 वर्षो में जलमग्न झील के क्षेत्र में 55 प्रतिशत कमी आयी है। यह आकं ड़े वर्ष 1989-2014 के बीच उपग्रह द्वारा लिये गये गणना पर आधारित है– जो हाल हाल में सांइटिफिक रिसर्च पब्लिशिंग डेलावेयर (अमेरिका) एवं वुहान (चीन) के जर्नल आफ जियोग्राफिक इंफार्मेशन सिस्टम में प्रकाशित हुआ है। इसके तहत बरैला झील का भौगोलिक अध्ययन सर्वाधिक प्रमाणिक सिद्ध हुआ है, (सैटेलाइट के आंकड़ों के प्रोसेसिंग में आर्क जी।आई।एस। व गूगल अर्थ सहित कई साफ्टवेयर का प्रयोग किया गया है)। बरैला झील कई बड़े चौरों महामदपुर, मिसरौलिया, अफजलपुर, सालाह, घघरौला, पटकोला, सतकौला, उफरौला, चमरा, झरबेसरा, पड़ोहा आदि को मिलाकर बनी है। यह झील क्षेत्र औषधियों जलीय पौधों से भी परिपूर्ण है। इस झील में साइबेरिया, चीन, स्पेन, जापान, आस्ट्रेलिया और खाड़ी देशों से नवंबर-दिसंबर माह में 40 प्रजातियों के विदेशी पक्षी आते हैं, जबकि 100 से अधिक प्रजातियों के स्थानिय पक्षी भी यहाँ बड़ी संख्या में आते हैं। आस्था है कि भगवान् श्रीराम अयोध्या से जनकपुर जाने के दौरान इस स्थल पर आये थे। वे जब जनकपुर पहुंचे तो स्थानीय लोगों ने एक दूसरे को दिखाते हुए कहा था कि **'वन अएला'** बाद में यह नाम धीरे-धीरे बरैला के रूप में चर्चित हो गया।

कुशेश्वरस्थान (पक्षी अभयारण्य), दरभंगा

लोकेशन : जिला मुख्यालय दरभंगा से 56 कि. मी. दूर, सिंघिया से 16 कि.मी. पूरब, समस्तीपुर – खगड़िया रेलखंड स्थित हसनपुर रोड स्टेशन से 22 कि. मी. उत्तर-पूर्व में, जिला के दक्षिण-पूर्व सीमा पर स्थित।

महत्व : बिहार का प्रमुख धार्मिक स्थल व शिवनगरी कहे जाने वाले कुशेश्वरस्थान का धार्मिक महत्त्व के अलावा प्राकृतिक सौंदर्य के मामले में भी विशेष स्थान है। 14000 हेक्टेयर क्षेत्र में फैले डेढ़ दर्जन से अधिक चौर (कंसार चौर, माहपरा चौर आदि) मिलकर एक मनोहारी झील का निर्माण करते हैं। यह क्षेत्र एक विकसित पक्षी अभयारण्य के रूप में प्रसिद्ध है। सालों भर यहाँ जल रहता है। पक्षियों का नजारा देखने के लिए युनेस्को क्लब की ओर से एक वाच टावर का निर्माण किया गया है। वर्ष 1994 में इस स्थल को पक्षी आश्रयणी बनाने की घोषणा की गयी थी। यहाँ कंसार, माहपरा, चातर, महरी, लरेला, महरैला, नदियामी, महिसौत, दिनमो, मधुवन, असमा सकीरना, बड़गांव, सुघराईन, तिलकेश्वर, उजुआ, गोलमा सहित कई छोटे-बडे चौर – पक्षी अभयारण्य का अनूठा स्थल है।

शरद ऋतु के आगमन के साथ ही उत्तरी गोलार्ध के रूस, जापान, मलेशिया, भूटान, बांगलादेश, चीन, इंडोनेशिया, मारिशस, नेपाल, बर्मा आदि देशों से 4 दर्जन से अधिक प्रजाति के दुर्लभ प्रवासी पक्षियों का आगमन पिछले 70 वर्षो से होता रहा है। इसी कारण से कुशेश्वरस्थान का पक्षी अभयारण्य के रूप में विश्व के मानचित्र पर है।

इनके अतिरिक्त बिहार के प्राकृतिक जलाशयों में मनिहारी घाट के समीप स्थित बांगा झील, पूर्णिया, संजय गांधी जैविक उद्यान झील, पटना, दुर्गावती डैम, रोहतास (सासाराम), भीमबांध डैम, मुंगेर आदि प्रमुख हैं।

**

नालन्दा विश्वविद्यालय की दिनचर्या में जल-विमर्श

डॉ काशीनाथ मिश्र*

जल हमारे जीवन का आधार है, इसलिए जल का एक नाम 'जीवन' भी है। जल शुद्ध भी करता है, अत: जल को शुद्ध रखना अति आवश्यक है। 'जल की शुद्धता' तथा 'जल से शुद्धता' दोनों को प्रति हमारे पूर्वज साकांक्ष रहे है। फलत: वे जलाशय की शुद्धता के प्रति भी अपना दायित्व निभाते रहे हैं। यहाँ नालन्दा विश्वविद्यालय की दिनचर्या से इन तीनों विषयों पर विमर्श प्रस्तुत है। इस ऐतिहासिक विवरण को विस्तार से चीनी यात्री इत्सिंग ने लिखा है। इत्सिंग स्वयं नालन्दा विश्वविद्यालय में 671ई. से 695 ई. तक छात्र के रूप में रहे थे। यहाँ जो कुछ भी है, वह आँखों देखा तथा हाथों किया विवरण है।

प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक क्रियाकलापों का चित्रण न सिर्फ भारतीय बल्कि विदेशों से आए विद्वानों ने भी अपने पुस्तकों में व्यवस्थित ढंग से किया है। आज कोरोना वायरस-जैसी वैश्विक महामारी के समय स्वच्छता एवं जल के उपयोग के प्रति सम्पूर्ण विश्व में लोग जागृत हुए हैं, लेकिन भारतीय जीवन पद्धति में स्वच्छता हेतु जल का उपयोग, रख-रखाव एवं जल संरक्षण के उपाय का विवरण प्राचीन संस्कृत साहित्य में तो मिलता ही है, मध्यकालीन भारत में भी इसके प्रति लोग जागरूक थे। इसका वर्णन चीन से आये बौद्ध विद्वान यात्री ईत्सिंग ने अपनी पुस्तक "बौद्ध धर्म" में विस्तृत ढंग से किया है।
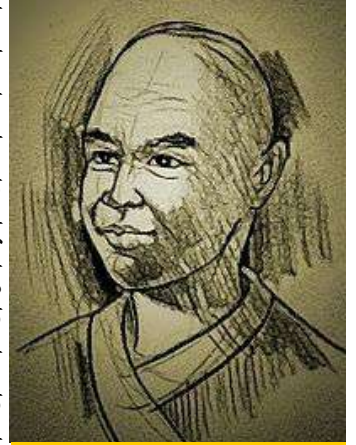
चीनी यात्री इत्सिंग

ईत्सिंग नालन्दा विश्वविद्यालय में A.D. 671 से A.D. 695 तक रहे थे। उस अवधि में उनके द्वारा लिखित, "बौद्ध धर्म" को 1881 के आसपास में जे. तकाकुसु (J.Takakusu) ने अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया, जिसे 1896 में ऑक्सफोर्ड क्लेरेंडोन प्रेस द्वारा मुद्रित किया गया। प्रसिद्ध चीनी विद्वान इत्सिंग ने नालन्दा विश्वविद्यालय में बौद्ध धर्म के केंद्र में रहकर 400 संस्कृत पुस्तकों का संग्रह भी किया था जिसमें कुल 500000 श्लोक थे। वे ए डी 695 में वापस चीन गए ए डी 700 से 712 में उन्होंने 56 संस्कृत ग्रन्थ का चीनी भाषा में अनुवाद किया।

प्रस्तुत आलेख सातवीं सदी में ईत्सिंग द्वारा लिखे "बौद्ध धर्म" के आधार पर नालन्दा विश्वविद्यालय के अन्तर्वासी द्वारा जल के उपयोग, स्वच्छता के नियम, एवं जल के रखरखाव की व्यवस्था जैसे विषयों का आज के सन्दर्भ में प्रत्यक्षीकरण है। 314 पृष्ठ में लिखित इस शोध परक ग्रन्थ में भूमिका के अतिरिक्त कुल 40 विषय हैं। इसके माध्यम 7 वीं सदी के भारतीय जीवनशैली का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। यहाँ जल तत्त्व के उपाध्यायओ के विषय वस्तु को सरल भाषा में प्रस्तुत करने का एक प्रयास है।

*उच्चतर माध्यमिक शिक्षक, 'विद्या भारती' अखिल भारतीय शिक्षण संस्थान, सरस्वती विद्या मन्दिर, शास्त्रीनगर, मुंगेर।

भोजन की शुद्धता एवं जल का प्रयोग

नालन्दा विश्वविद्यालय के अवशेष

"शुद्ध एवं अशुद्ध भोजन में भेद", उपविषय में वर्णित है कि उस समय बनाया हुआ बासी खाद्य पदार्थ अशुद्ध एवं अखाद्य समझा जाता था। यह भोजन मृतात्माओं एवं पक्षियों के उपयोग के लिए छोड़ दिया जाता था। स्वागत समारोह या सामान्य भोज में भी शुद्ध जल से हाथ एवं मुँह धोने, ढंग से कुल्ला करने, एवं बिना शुद्ध हुए न तो किसी व्यक्ति को और न ही किसी ताजे भोजन को स्पर्श करना, एक शिष्टाचार का विषय था। भोजन करते समय एक दूसरे से दूरी आवश्यक था। जल से शुद्ध हुए बिना किसी व्यक्ति को स्पर्श कर दिए तो स्पर्श हुए व्यक्ति अशुद्ध हो गए। उन्हें शुद्ध जल से कुल्ला करना होगा। यदि किसी व्यक्ति ने किसी कुत्ता को स्पर्श कर लिया तो उसे शुद्ध होना होगा। भोजन कर लिए व्यक्ति को अलग रहना होता था। हाथ मुँह एवं अन्य प्रयुक्त सामग्री को जल से साफ करना होगा। शुद्ध हुए बिना किसी प्रकार की प्रार्थना या मन्त्र आदि का प्रयोग निष्फल माना जाता था। भोजन एवं मल त्याग के पश्चात शुद्ध जल से पवित्र हुए बिना कोई भी व्यक्ति किसी आसन पर बैठ नहीं सकता था। आन्तरिक शुद्धि के लिए निराहार व्रत भी किया जाता था।

शुद्धता : भारत की एक विशेषता

ईत्सिंग ने स्पष्ट किया है कि भारत एवं अन्य पाँच क्षेत्रों में प्रथम एवं मुख्य अन्तर स्वच्छता को लेकर है। उदाहरण स्वरूप मंगोलिया से भारत आए लोगों के बारे में कहा गया है कि वे न तो दातून का प्रयोग कर मुँह धोए और ना ही भोजन के समय किसी प्रकार की शुद्धता का पालन किये। एक साथ जमीन पर एक दूसरे से सटे भोजन कर लिये। यहाँ तक कि मल त्याग के बाद भी जल से शुद्ध नहीं हुए। सूअर एवं कुत्तों के संपर्क में भी रहे जिसके कारण दूत को निंदा एवं उपहास का पात्र बनना पड़ा। पृष्ठ संख्या 26 में स्पष्ट उल्लेख है कि चीन में तो प्राचीन काल से ही शुद्ध एवं अशुद्ध भोजन में अन्तर नहीं समझा गया। यह उस काल के भारतीयों की विशिष्टता थी।

भोजनोपरांत मुँह धोने की क्रिया का व्यापक वर्णन मिलता है। भोजन करने के बाद दूर हटकर एकान्त में लोग हाथ-मुँह धोने का कार्य करते थे। मिट्टी के घड़े में किसी झड़ना या जलाशय से जल लाकर रखते एवं छोटे मग के स्थान पर शंख का भी उपयोग करते थे। दातुन चबाकर दाँत एवं जीव साफ करते थे। यदि शुद्ध नहीं हुआ तो व्रत अथवा धर्माचरण सम्भव नहीं हो पाएगा। वे ओठों को बेसन अथवा मिट्टी से रगड़ कर साफ़ करते थे ताकि भोजन का चिकनाई पूर्णतः साफ हो जाए। फिर घड़े के शुद्ध जल से बार-बार कुल्ला करते थे एवं लघु पात्र ताजे पत्तों पर या हाथ में रखा जाता था। लघु पात्र को बेसन, सूखा मिट्टी अथवा गाय गोबर से राख से शुद्ध किया जाता था। सही ढंग से साफ नहीं करने वाले दोषी समझे जाते थे इस क्रिया का निरीक्षण श्रेष्ठ ज्ञानी लोगों द्वारा होता था। शिष्यों के लिए जल पात्र में जल भरकर रखना अनिवार्य होता था।

जल के दो प्रकार

पीने एवं धोने के उद्देश्य से अलग-अलग जल रखने की व्यवस्था थी। दो जल पात्र (घड़ा) क्रमशः कुण्ड एवं कलश कहलाते थे। शुद्ध जल पूर्णतः शुद्ध रूप से हाथ धो कर लाया जाता था। मौसम के अनुरूप लाए हुए अतिरिक्त पात्र को विशिष्ट जल या कालोदक कहा जाता था। शुद्ध जल रखने के लिए घड़ा का मुँह छोटा दो अंगुली अर्थात 1 इंच बराबर ऊँची होनी

चाहिए इसके नीचे एक छोटा छेद चीनी काटा (चॉपस्टिक) जितना छोटी होनी चाहिए। घड़ा उठाकर उस छोटे छेद से जल पीने में कोई दोष नहीं माना जाता था। पीने वाले छेद से ऊपर एक और छेद एक छोटा सिक्का के आकार का होता था जिससे दो या तीन गैलन जल उसमें डाल दिया जाता था। धूल या कीड़ा से बचाने के लिए दोनों छेद को बॉस लकड़ी लिनन कपड़ा या पत्ते से क्षेत्र को बन्द कर दिया जाता था। इसमें भी शुद्ध जल डालने से पहले ठीक से धोया जाता था ताकि अंदर कोई धूल या कीड़ा न रहे।

जल ढोने की विधि

घड़ा को ढोने के लिए सूती कपड़े का झूला बनाया जाता था जिसका आकार 1 फुट चौड़ा एवं 2 फुट लंबा होता था दूसरे कपड़े से बना दो किनारे को 7:30 इंच के आकार में सिलाई किया जाता था, ताकि कंधे में टांग कर दूर तक यात्रा किया जा सके वह घर आ के मुँह पर एक ढक्कन रखते थे ताकि धूल से जल अशुद्ध न हो जाए।

जल का परीक्षण

प्रातः काल प्रत्येक दिन जल का निरीक्षण अनिवार्य रूप से होता था। निरीक्षण का स्थान घड़ा, कुआँ, तालाब एवं नदी होता था। सर्वप्रथम काँसे के पात्र में घड़ा से जल उड़ेलकर या पीतल के करछुल से निकालकर ईट पर धीरे-धीरे डाला जाता था या इस उद्देश्य के लिए लकड़ी के बने यन्त्र के सहारे कुछ क्षण तक निरीक्षण किया जाता था। सामान्यतया किसी बेसिन अथवा पात्र ने भी उसका निरीक्षण हो जाता था। एक बाल के समान छोटा कीड़ा से भी जल को सुरक्षित करना उद्देश्य होता था। किसी भी प्रकार का कीड़ा पाए जाने पर वह जल वापस घड़ा में डाल दिया जाता था एवं उस घड़ा सा बड़े जल पात्र को दो बार शुद्ध जल से साफ किया जाता था। कीड़ा से युक्त जल को तालाब या नदी में डाला जाता था। पुनः स्वच्छ जल भरकर लाया जाता था। कुआँ के जल का उपयोग सामान्य विधि, उच्च स्तर के नए कपड़े से छानकर होता था। कुआँ से जल खींचकर किसी पात्र से निरीक्षण करते थे। कोई कीड़ा नहीं होने पर रात भर इसका उपयोग करते थे। नदी एवं तालाब से लाये जल के परीक्षण की क्रिया का वर्णन "विनय संग्रह" में विस्तृत ढंग से किया गया है।

विनय संग्रह के अनुसार नदी एवं तालाब के जल को दोहरे सूती कपड़े से छानकर शुद्धता का परीक्षण कर प्रयोग किया जाता था। एक भी कीड़ा पाए जाने पर पुनः जल पात्र को तीन बार शुद्ध जल से रगड़ कर साफ़ किया जाता था। इस तरह पर्याप्त

नालन्दा विश्वविद्यालय के अवशेष

नालन्दा विश्वविद्यालय के अवशेष

नालन्दा विश्वविद्यालय के अवशेषों के बीच जगत एवं चबूतरा के साथ प्राचीन कुआँ

संरक्षित जल की शुद्धता का परीक्षण सुबह होता था। यदि इसके लिए निर्धारित व्यक्ति इस कार्य को करने में लापरवाही करते तो उन्हें रात भर खड़ा रहना होता था चाहे उसमें कोई कीड़ा मिले या ना मिले।

जल संग्रह की विधि

ईत्सिंग द्वारा लिखित इस पुस्तक से स्पष्ट होता है कि सातवीं सदी में भी यहाँ लोग जल संग्रह करने के सम्बन्ध में बहुत ही संवेदनशील थे। अशुद्ध जल के उपयोग से बीमारी एवं जान का खतरा है, वे समझते थे। जल को छानने हेतु कई विधियों का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक से प्राप्त होता है। किसी कुआँ से जल निकालने के लिए छन्नी का उपयोग होता था। नदी या तालाब से शुद्ध जल लेने के लिए एक प्रक्रिया के तहत लोग दो बर्तनों का प्रयोग करते थे। एक बेंत का बना बर्तन जिससे पानी छन कर आ सके फिर उसमें दूसरा बर्तन डालकर जल निकालने की प्रक्रिया थी। छठे एवं सातवें महीनों में कीड़ा सूक्ष्म रूप में पाए जाने के कारण बहुत सावधानी रखनी होती थी। इस समय दश परत तक के कच्चे सिल्क कपड़ा से भी कीड़े गुजर जाते थे। इस समय जीवन संरक्षण के लिए सिल्क कपड़ा तो उपयोगी होता ही था भारत में तांबे का थालीनुमा तश्तरी (plate like tray) का भी उपयोग होता था। जीवन रक्षक पात्र एक छोटा जल पात्र होता था। इसका मुँह खुला होता था। इसमें दो घुण्टी (knobs) नीचे किनारे में होता था जिसे किसी नाल(cord) से बन्द किया जाता था। जल पात्र पानी में सीधे दबाकर डुबाया जाता था एवं दो से तीन बार में दुबा कर जल भरकर उपयोग किया जाता था। दो से तीन मील तक की यात्रा करने पर भी नालन्दा विश्वविद्यालय से आचार्य अपना छन्नी एवं जल पात्र साथ रखते थे। कहीं रात्रि विश्राम स्थल पर जल शुद्ध करने की प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती तो वहाँ अन्न-जल ग्रहण किए बिना ही रह जाते, भले भूख एवं प्यास से उनका प्राणान्त ही हो जाए।

स्नान की प्रक्रिया

नियत समय पर स्नान अध्याय संख्या 20 मे इत्सिंग ने लिखा है कि भारत में स्नान की प्रक्रिया अन्य देशों से भिन्न रही है। सभी दिशाओं में यहाँ का मौसम अनुकूल रहता है। बारहों महीने यहाँ फल फूल उपलब्ध होते हैं। बर्फ गिरने का अनुभव नहीं होता है। कुछ ऋतुओं में गर्मी पड़ती है, लेकिन लोग कष्ट का अनुभव नहीं करते हैं। ठंड के समय में भी लोग नियमित स्नान करते हैं एवं शरीर की स्वच्छता को महत्व देते हैं। दैनिक जीवन में स्नान करके ही लोग भोजन करते हैं। तालाबों में पर्याप्त मात्रा में यहाँ जल उपलब्ध होता है। एक योजन तक चलने पर 20 से 30 तालाब पाए जाते हैं। तालाब खोदना बड़े पुण्य का कार्य माना जाता है। तालाबों का आकार भिन्न-भन्न होता था। कुछ तालाब एक माउ अर्थात 7332 वर्ग-गज का होता है, तो कुछ 5 माउ अर्थात 5 ×7332 वर्ग-गज तक का होता है। तालाब के चारों भाग में साल वृक्ष लगाया जाता है एवं इसके आकार 40 से 50 फीट तक का होता है। इन तालाबों में जल का स्रोत वर्षा का जल होता है जो नदियों के जल जैसा पवित्र होता है। उनके अनुसार नालन्दा विश्वविद्यालय के समीप 10 से भी अधिक बड़े तालाब थे। प्रत्येक सुबह घंटा की ध्वनि से शिक्षार्थियों को स्नान करने हेतु स्मरण कराया जाता था। विश्वविद्यालय से शिक्षार्थी कभी सौ की संख्या में तो कभी हजार

की संख्या में स्नान करने हेतु एक साथ निकलकर भिन्न-भिन्न तालाबों की दिशाओं में निकल कर स्नान करने हेतु जाते थे। स्नान हेतु कुछ नियम होता था। 5 फुट की लंबाई एवं इसके आधा चौड़ाई आकार का वस्त्र (अंगोछा) को अन्तर्वस्त्र के ऊपर पहनकर अपना सामान्य अन्तर्वस्त्र खोलते थे। पुस्तक में अंग वस्त्र पहने के ढंग का भी विस्तृत वर्णन है। अंगोछा को कमर में दोनों छोड़ के बाएँ हाथ से दाहिने का ऊपर भाग एवं दाएँ हाथ से बाएँ का ऊपर भाग के कोना को पकड़कर एक दूसरे से ऐठ कर अंदर की ओर मोड़ दिया जाता था। सोने से पूर्व इसी प्रक्रिया से अन्तर्वस्त्र खोलने की प्रथा थी। मठ के अंदर स्नान करने वालों के लिए स्नान घाट में स्नान की व्यवस्था होती थी, लेकिन जल दूसरे के द्वारा उड़ेला जाता था। वहाँ खुले स्थान में ईंट से बने तालाब एवं स्नानघर की व्यवस्था को विश्व के लोगों ने स्वागत किया। वहाँ किसी रोग के निदान के लिए औषधि स्नान भी होता था। कभी संपूर्ण शरीर में तेल मालिश किया जाता था तो कभी पैर में तेल मालिश किया जाता था। प्रातः काल सिर में एवं रात्रि में पैर में तेल मालिश प्रायः नियमित होता था। इस क्रिया से दृष्टि दोष एवं ठंड का रोग नहीं होता था। भूख लगने पर व्यक्ति के लिए स्नान करना आवश्यक होता था। स्नान करने के पश्चात भोजन करने से दो लाभ माना जाता था। प्रथम शरीर शुद्ध एवं धूल से मुक्त हो जाता। दूसरा भोजन की पाचन क्रिया दुरुस्त रहती। साथ ही कफ जैसी आंतरिक बीमारी भी नहीं होती एवं मन शान्त रहता था।

तेल्हारा में खुदाई से प्राप्त एक प्राचीन कुआँ

यहाँ उल्लेखनीय है कि चीनी भाषा में प्रयुक्त अनेक सन्दर्भ ग्रन्थ का नाम इत्सिंग ने लिया है। अंग्रेजी भाषा में अनुवाद के समय जे तकाकुसु द्वारा 1880 के आसपास में भी अन्य ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो पाया था। आज भी प्रायः चीन में यहाँ से इत्सिंग द्वारा ले जाते गए ग्रन्थ उपलब्ध हो।

***

तालाब- बर्तनों का भण्डार भी

प्राचीन काल में एक लोक-मान्यता थी कि किसी के घर कोई शुभ-कार्य होता है, तो भोज-भात के लिए प्राचीन और विशाल तालाब में रहनेवाले देवता विधिपूर्वक माँगने पर पीतल के बर्तन भी उपलब्ध कराते हैं। कहा जाता था कि जलदेवता को न्योंता दिया जाता है, तो जिस दिन बर्तन की जरूरत होती है, उसकी पिछली रात्रि तालाब के किनारे आवश्यकतानुसार पीतल के बड़े-बड़े बर्तन तैरने लगते हैं। लोग उन्हें उठाकर लाते हैं और उपयोग कर पुनः जलदेवता को सौंप देते हैं। किसी व्यक्ति को लोभ हो गया तो उन्होंने बर्तन नहीं लौटाया, परिणामस्वरूप उनका पूरा परिवार उसी तालाब में डूबकर मर गया।

वास्तविकता यह थी कि पहले फूस-घर होते थे, चोरी-डकैती होती रहती थी। यदि किन्हीं के घर में इस प्रकार के बड़े-बड़े बर्तन होते थे, तो चोरी-डकैती के डर से वे अपवाह फैलाते थे कि मेरे यहाँ ये बर्तन नहीं हैं। लेकिन ये अपवाह इसलिए कारगर होते थे, क्योंकि जल में देवता होते हैं, यह मान्यता आम लोगों में थी।

गंगा-दशहरा के अवसर पर विशेष कविता

सुरसरि संताप

- श्री दामोदर पाठक*

कलि कलंक कलाप विनाशिनी,
जगतताप समस्त निवारिणी,
सकल लोक सुमंगल कारिणी,
तदपि मैं अति त्रस्त तरंगिणी।

नृप भगीरथ ने तप से मुझे
इस धरा पर लाकर गर्व से
सगर - संतति शाप विमुक्ति को
अखिल भूतल शीतल सा किया।

शिखर तुंग हिमाचल से चली
गगन गामिनी नाम सुरापगा।
इस धरा पर देख हरीतिमा
हृदय मोद विमोहित हो गया।

विमल धार लिए जल आ गया,
नगर रम्य तटों पर आ बसे।
अति पवित्र सुकूल सुशोभते
मधुप कोकिल सुस्वर गूँजते।

हरिपदी हर की अति सुप्रिया,
रविकुलीन सदा नृप गौरवा,
सुरनदी सब कल्मष धो रही,
जननि मैं जन पातक हारिका।

सुत नहीं अब तात न हैं यहाँ,
कृश - शरीर विकंपित हो रही।
प्रिय भगीरथ ने तज के मुझे,
चल दिया निज शाश्वत गेह को।

सफल जीवन हो न सका यहाँ,
सलिल पावन भी न रहा कहीं,
पुलिन पे सब तीरथ हैं जहाँ,
मलिनता उनकी न मिटा सकी।

शिव जटा-वन में सुख से बही
शशि-छटा रस अमृत चूमती,
कमलिनी बन सौरभ बाँटती,
पर यहाँ बस कर्कट ढो रही।

गरल से मल वाहित हैं यहाँ,
शव सदा बहते दिखते जहाँ
कुछ जले कुछ अर्द्ध जले हुए।
पशु - शवों तक की गति है यहीं।

तिमिर पातक मोचन की कथा-
अब असम्भव है, यह क्या कहूँ!
त्रिपथगा अब पात्र नहीं रही
सिमटती दिखती यह देह भी।

विटप गुल्म लतादि रहे नहीं
क्षिति जलादि न शुद्ध रहे कहीं।
अति उदार जहाँ सब लोग थे
दनुज वृत्ति चतुर्दिक है वहीं।

अधम पातक भी जब दर्प से
कर रहे अभिषेक गुमान से,
उस घड़ी तन की शुचिता मिटी
पतित पावनता मन से गई।

***

*संस्कृत एवं हिन्दी के अध्यापक तथा प्राचार्य (अ.प्रा.) आदित्य बिड़ला +2 विद्यालय ,मुरी- राँची, ग्राम ,पो. खुखरा, जिला- गिरिडीह, झारखंड।

जीवनदायिनी दिव्य सम्पदा-जल

श्री महेश प्र. पाठक*

आज नदियों पर बाँध बनाये जा रहे हैं, फलतः नदियाँ सूख रही हैं, उनमें गाद भरने की अलग समस्या आ गयी है। हमारे जल-स्रोत जिस प्रकार सूखते जा रहे हैं, हम कुओं को भरते जा रहे हैं, तालाबों को कूड़ादान बना रहे हैं, हमने तालाब में जल के आमगन-निर्गमन के रास्ते बन्द कर दिये हैं। वर्षा की कमी होती जा रही है, ऐसी स्थिति में यह जानना जरूरी हो जाता है कि हमारे पूर्वज जल के प्रति कितने संवेदनशील थे। साथ ही, आज की परिस्थिति में जल-संरक्षण के लिए हमें क्या करना चाहिए यह जानकारी भी आवश्यक हो जाता है।

जल ही जीवन का मूल है। जल की आवश्यकता जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त पड़ती है। दैनिक जीवन की पवित्रता, शौच, मार्जन, अघमर्षण, देवार्पण, सन्ध्यादि कर्मों के लिये जल अपेक्षित है। बिना अंजुली में जल लिये कोई संकल्पित नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त अन्नपाक, वस्त्र-प्रक्षालन, दैनन्दिन के कार्य, कृषिकर्मों आदि में जल की आवश्यकता होती है। जलचर प्राणीयों के लिये जल उतनी ही जीवनदायिनी होती है जितना हम मनुष्यों के लिये। जल पर आधारित जल का दोहन कर विद्युत् उर्जा का उत्पादन किया जाता है, जो हमारे लिये प्रकाश का एक आवश्यक स्रोत है। जल के द्वारा किये गये उपकारों को हम कभी चुका नहीं सकते। लगभग सभी उन्नत मानव-सभ्यताओं का विकास भी नदियों के किनारे ही हुआ है। इसप्रकार जलदेवता के अमूल्य सहयोग के लिये हमें सदैव कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए उनका सम्मान करना चाहिये, यही हमारी शास्त्रीय परम्परा भी है। हिन्दी में इसे जल, फारसी में 'आब', अंग्रेजी में 'वाटर' और न जाने कितने नाम हैं। जल से घिरी हुई पृथ्वी 'रसा' भी कहलाती है, क्योंकि जल रस का भी द्योतक है। जहाँ जल हों वहाँ तीर्थ स्वमेव उपस्थित हो जाती है। भारतीय सनातन संस्कृति के विधि-विधान को जल से अलग कर देखा ही नहीं जा सकता।

शास्त्रीय विचार

भारतीय संस्कृति में जल को देव एवं नदियों को दैवीकृत कर इनके दिव्यतमरूप को उद्भासित करती है। गीता में इन्हें भगवान् ने अपनी विभूति कहा है -जलाशयों में समुद्र- **'सरसामस्मि सागरः'** (गी.10/24), जलचरों के अधिपति वरुणदेव - **'वरुणो यादसामहम्'** (गी.10/29), नदियों में भागीरथी गंगा- **'स्रोतसामस्मि जाह्नवी'** (गी.10/31)- मैं ही हूँ। जल अर्थात् आपः की ऋग्वेद में चार सूक्तों (7/47-49, 10/9-30) में प्रशस्ति मिलती है। नैघण्टुक (5/3) में मात्र पार्थिव देवों के अन्तर्गत ही जल की गणना की गयी है। (वैदिक मायथोलोजी, पृ.- 161)। आचार्य यास्क ने जल को मध्यमस्थानीय देवता मानकर प्रसिद्ध 'अप्-सूक्त' में कहा है- **आपो हि ष्ठा मयो भुवस्ता न उर्जे दधातन। महे रक्षणाय चक्षसे॥** (ऋक्॰109/1, यजु॰-36/14)। 'हे आपः! आप प्राणिमात्र को सुख देनेवाले हैं, सुखोपभोग एवं संसार में रमण करते हुए हमें उत्तम दृष्टि की प्राप्ति हेतु हमें पुष्ट करें।'

* "गार्ग्यपुरम्" श्रीसाईं मन्दिर के पास, बरगण्डा, पो- जिला-गिरिडीह, (815301), झारखण्ड, Email: pathakmahesh098@gmail.com मो. नं. 9934348196

जल में ही नारायण का वास

जिनका जल (नारा) में ही अयन (वास) हो, वे नारायण हैं। ये नरों (जीवात्माओं) के अयन (आश्रय) हैं- इसलिये 'नारायण' हैं। (उद्योगपर्व-70/10)। प्रलयकालीन आख्यान में जब समस्त संसार जलमग्न था, उस समय एक वट-वृक्ष पर नारायण शयन कर रहे थे, तब ऋषि मार्कण्डेय ने इनका दर्शन इसी अवस्था में किया था। (वनपर्व-189/3)। मनुस्मृति (1/10) में कहा है-

आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः।
ता यदस्यायनं पूर्व तेन नारायणः स्मृतः॥

जल को नार कहते हैं, क्योंकि वे नार से ही उत्पन्न हुए हैं और नार ही जिनका घर हो. तो इनका नाम 'नारायण' है। जब नारदजी श्वेतद्वीप पहुँचे तब वहाँ उन्होंने चन्द्रमा के समान कान्तिमान् पुरुष को देखा। ये भगवान् नारायण ही थे। (शान्तिपर्व-338/1-3)। इसलिये जल का सदैव सम्मान करना चाहिये।

पञ्चमहाभूतों में जल

लोक में ये -आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी 'पञ्च महाभूत' कहलाते हैं, जिन्हें ब्रह्माजी ने सृष्टि के आरम्भ में रचा था। (शान्तिपर्व-184/3)। आगमशास्त्रों का कहना है-

आकाशस्याधिपो विष्णुरग्नेश्चैव महेश्वरी।
वायोः सूर्यः क्षितेरीशो जीवनस्य गणाधिपः॥

'पञ्चतत्त्वों में आकाश तत्त्व के अधिष्ठात्र देवता- विष्णु, अग्नितत्त्व की देवी दुर्गा, वायुतत्त्व के सूर्य, पृथ्वीतत्त्व के शिव एवं जलतत्त्व के गणेशजी हैं।' इसलिये पृथ्वीतत्त्व के अधिपति होने के कारण भगवान् शिव के पार्थिव लिंग का निर्माण कर पूजन किया जाता है। सृष्टि के उत्पत्तिक्रम में कहा गया है- ब्रह्माजी त्रिगुणात्मिका प्रकृति द्वारा सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करते हैं। सबसे पहले 'महत् तत्त्व' प्रकट होता है, जिससे स्थूल सृष्टि का आधारभूत 'मन' उत्पन्न होता है। इसी मन से आकाश की उत्पत्ति होती है। आकाश में जब विकार होता है तब उससे पवित्र और सम्पूर्ण गन्धों को वहन करने वाली बलवान वायुतत्त्व का आविर्भाव होता है। फिर वायुतत्त्व में जब विकार होता है तब प्रकाशपूर्ण अग्नितत्त्व प्रकट होता है। फिर अग्नितत्त्व में विकार आने पर जलतत्त्व की उत्पत्ति होती है। जल से ही गन्ध वहन करनेवाली पृथ्वी का प्रादुर्भाव होता है। इनके कार्य भी अलग-अलग हुआ करते हैं, संक्षिप्त रूप में इनके गुण इस प्रकार कहे गये हैं –

(1) आकाश के कार्य- शब्दगुण, श्रोत्र इन्द्रिय और शरीर के सम्पूर्ण छिद्र।
(2) वायु के कार्य- स्पर्श, चेष्टा और त्वगिन्द्रिय।
(3) अग्नि (तेज) के कार्य- रूप, नेत्र और परिपाक।
(4) जल के कार्य- रस, जिह्वा और क्लेद (गीलापन) और
(5) पृथ्वी (भूमि) के कार्य- गन्ध, घ्राणेन्द्रिय और शरीर- ये भूमि के गुण कहे गये हैं।

पञ्चस्थूल महाभूत, दस इन्द्रियाँ और मन- इन सोलह तत्त्वों से शरीर का निर्माण हुआ है। (शान्तिपर्व-232/12)। प्रलयकाल में इसके उल्टे क्रम से सभी एक दूसरे में विलीन होते जाते हैं। समस्त जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों के प्राण का आधार जल ही है।

ऋग्वेद में वरुण को जल का नियामक कहा गया है। वेद में इनके लिये दस से अधिक सूक्त समर्पित हैं। नदियाँ इन्हीं के विधानों के अनुसार निरन्तर प्रवाहित होती हैं। पृथ्वी और अन्तरिक्ष में जितने भी जलरूप हैं, उनसबों के स्वामी वरुणदेव ही हैं। देवताओं ने इन्हें 'जलेश्वर' पद पर अभिषिक्त किया है। (महा. शल्य.47/9-10, ऋ.7/65/4। अथर्ववेद (5/24/4) में इन्हें

'अपामधिपतिः' कहा है। इनका आवास जल ही है। (अथर्व-7/83/1)। इनकी गणना दसदिक्पालों में तथा द्वादश आदित्यों में भी होती है। (महा.आदि -65/15)। अर्जुन के प्रसिद्ध धनुष गाण्डीव एवं अक्षय तुणीर इन्हीं के आयुध थे, जिसे स्वर्गारोहण के पूर्व अर्जुन ने इन्हें लौटा दिया था। (महा. विराट-43/6)।

अग्नि का वासस्थान जल कहा गया है अर्थात् ये जलों में प्रविष्ट रहते हैं। इसप्रकार अग्नि को जल का पुत्र समझना चाहिये। यह सुनने में अटपटा अवश्य लगता है कि जल का अग्नि से कैसा सम्बन्ध ? इसका वर्णन महाभारत के वनपर्व में मिलता है- **सिन्धुनदं पञ्चनदं देविकाथ सरस्वती....एता नद्यस्तु धिष्ण्यानां मातरो याः प्रकीर्तिताः।** (महा. वन-222/22-26)। सिन्धुनद, पञ्चनद, देविका, सरस्वती, गंगा, शतकुम्भा, सरयू, गण्डकी, चर्मण्वती, मही, मध्या, मेधातिथि, ताम्रवती, वेत्रवती, कौशिकी, तमसा, नर्मदा, गोदावरी, वेणा, उपवेणा, भीमा, वडवा, भारती, सुप्रयोहा, कावेरी, मुर्मुरा, तुंगवेणा, कृष्णवेणा, कपिला और शोंणभद्र-ये सभी नदियाँ और नद हैं, जो अग्नि की उत्पत्ति के स्थान कहे गये हैं अर्थात् ये अग्नि की मातायें हैं।

वैश्विक विचार

विश्व आर्थिक मंच का मानना है कि आगामी वर्षों में जीवन के लिये जल का संकट होना अवश्यम्भावी है। विश्वभर के लगभग 75% से ज्यादा लोग जल-संकट से जूझ रहे हैं। मार्च के महीने में गर्मी शुरू हो जाती है, शायद जल की महत्ता को जनमानस में प्रचार करने के लिये यह उपयुक्त महीना जान पड़ता है, इसलिये 22 मार्च को 'विश्व जल-दिवस' (World water day) मनाया जाता है। लेकिन यह दिवस मात्र दिवस बन कर रह गया है। 2007-2017 तक की बढ़ती आबादी की चपेट में आकर पृथ्वी पर पानी की किल्लत 61% तक की कमी दर्ज की गयी है। अनुमान किया जाता है कि 2030 तक यह स्थिति और भी भयावह रूप धारण कर सकती है। संयुक्तराष्ट्र का अनुमान है कि देश के 54 देश 2050 तक अगर जल का उचित प्रबन्धन करने में सक्षम नहीं होंगे, तो इसके गंभीर परिणाम भी आ सकते हैं। अगर ऐसा ही रहा तो आगामी विश्वयुद्ध जल को लेकर ही होगा।

भारतीय परिदृश्य

भारत सरकार ने 'जल जीवन मिशन' की स्थापना 15 अगस्त 2019 में शुरू की थी, जिसमें यह लक्ष्य रखा गया है कि 2024 तक समस्त ग्रामीण परिवार को नल-जल की सुविधा प्राप्त हो। पृथ्वी की सतह पर लगभग 75% जल है- उनमें से 97% समुद्रों में हैं और शेष 3% जल ही पीने लायक है। अब हम इन जलस्रोतों को देखें कि किन-किन स्रोतों में कितना जल उपलब्ध है-समुद्र में- 97.6%, ध्रुवीय ग्लेशियर में-2.00%, भूमिगत जल-0.29%, मीठे पानीवाली झीलें-0.009%, खारे पानी की झीलें-0.008%, मृदा में आर्द्रता के रूप में-0.005%, नदियों में जल-0.0009% एवं वायुमण्डल में वाष्प के रूप में-0.0009% है। (स्रोत- ''इनवायरमेंटल ज्योग्राफी'' -मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल)।

भारत में जहाँ संसाधनों की कमी नहीं, नदियाँ भी कम नहीं, लेकिन पीने के पानी की समस्या बनी रहती है। इसका मुख्य कारण है- काल-कारखानों के अपशिष्टों का निस्सारण। जिससे जल का प्रदूषण खतरनाक तरीके से बढकर सम्बन्धित नदियों में रहने वाले जलीयप्राणियों के लिये भी रहना दुष्कर हो गया है। देश की प्रमुख नदियों गंगा, यमुना जैसे पवित्र नदियों में रासायनिक कचड़े, चीनी मीलों के अपशिष्ट, चमडा उद्योग के गंदे जल, मल-जल, सीवर के गंदे जल का सीधा प्रवाह किया जाना। गौर हो कि गंगा के किनारे 118 शहरों के औद्योगिक कचड़े इसमें प्रवाहित किये जाते हैं। इस ओर गंगा की अविरलता एवं निरंतरता को अक्षुण्ण रखने के लिये भारत सरकार की 'नेशनल ग्रीन त्रिव्युनल' एवं 'नमामि गंगे परियोजना' काफी कुछ प्रयास कर रही है। पुनःजहाँ हम वर्षा के द्वारा प्राप्त जल को संरक्षित नहीं पाते और अमूल्य वर्षाजल बेकार होकर सीवरों के माध्यम से बहकर निकल जाया करता है, जिससे ग्राउंड-वाटर का रिचार्ज नहीं हो पाता, परिणामतः फरवरी-मार्च (गर्मी शुरू होने के पहले) में ही कुँए के जलस्तर में गिरावट दर्ज होने लगती है। भारत में वर्षा के दिनों किसी राज्य में बाढ़ जैसी स्थिति

देखी जाती है तो कहीं पर्याप्त वर्षा नहीं हो पाने के कारण सूखा भी पड़ता है। एक अनुमान के अनुसार 10 राज्यों में 254 जिलों को सूखे जैसी स्थति का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति से निपटने के लिये सरकार द्वारा 'नदी जोड़ो परियोजना' के अन्तर्गत जल-संसाधन, नदी विकास एवं गंगा सफाई मन्त्रलय के तहत विशेष कार्ययोजना का भी गठन किया गया है, जिसका बजट दस लाख करोड़ के आसपास है। इस योजना का आधार है कि-'जहाँ ज्यादा पानी है उसे उस स्थान पर पहुँचना जहाँ पानी कम हो।' बहुत सी नदियाँ इस योजना में सूचीवद्ध हैं। हमारा देश अब जनसँख्या का दवाब भी झेल रहा है। सबों को भोजन, वस्त्र और आवास की प्रतिबद्धताओं के अतिरिक्त जल को भी इसमें शामिल कर लेना उचित जान पड़ता है। जल का सदुपयोग तरीके से आज हम नहीं करेंगे तो आने वाली पीढ़ी हमें कभी माफ़ नही करेगी। हमें ही यह सोचना होगा कि जल को कैसे बचायें, इनमें से कुछ उपाय हैं-

- जल-जागरूकता कार्यक्रम को अभियान बनायें।
- छोटे-छोटे जल ठहरने वाले गड्ढे, ढोभे का निर्माण करें।
- तालाबों को समतल कर कोलोनियों के निर्माण पर रोक हो।
- सूखे पड़े हुए कुएँ, तालाबों को पुनर्जीवित किये जाँय।
- हरेक गाँव में तालाब का निर्माण हो।
- उपयोग में लाये गये जल को नाली में न फेंककर पौधों में डालें।
- पाइप का सीधा प्रयोग न कर झरनों वाले नोबों का प्रयोग करे, जिससे कम पानी में ही गाड़ी-घुलाई, पौधों में पानी का सिचाई-पटाव किया जा सके।
- धूप में सिंचाई न करें, दिन ढ़लने पर करें।
- वृक्षारोपण का नियमित कार्यकलाप हो।
- अपने-अपने घरों में वर्षा जल का संचयन एवं संरक्षण करें।
- बच्चों में जल संरक्षण की शिक्षा और जरूरत को बतायें। आदि।

जल की उपलब्धता कहाँ पर, कैसे पता लगायें

- जहाँ पलास (टेसू) के वृक्ष उगें हुए हों, वहाँ पानी मिलने के संकेत होते हैं।
- अकाब की झाड़ियाँ जहाँ बहुतायत में हों, वहाँ भूगर्भीय जल के संकेत माने जाते हैं।
- जामुन, अमरुद, गुलर आदि के आसपास भी भूगर्भीय जल होने के संकेत बताये जाते हैं। हाँ, पीपल, सागौन आदि जैसे वृक्ष के पास जल नहीं पाये जाते।

जल का पता लगाने के लिये ग्रामीण विधि का भी उपयोग लाया जाता है परन्तु यह कितना कारगर है, कहा नहीं जा सकता। बहुतों के लिये यह अनुभूत भी हो सकते हैं -

पहली विधि - हथेली पर नारियल को सीधा रखकर पानी खोजने की प्रक्रिया, जहाँ पानी होने की संभावना होगी वहाँ नारियल अपने आप खड़ा हो जायेगा।

दूसरी विधि- जामुन या गुलर की केंटीनुमा लकड़ी को लेकर पानी का पता लगाया जाता है, जहाँ पर पानी की संभावना दिखती है, वहाँ यह लकड़ी घुमने लगती है।

तीसरी विधि- जहाँ घर-मकान बनवाना हो, वहाँ पलास के पत्ते पर एक मिट्टी का ढेला रख दें। यदि इसमें नमी दिखाई पड़े और पलास के पत्ते के ऊपर ओस की बूंदें जमी हुई मिले, तो समझना चाहिये कि यह जल मिलने के संकेत कर रहे हैं।

जल के गुण

अपां शैत्यं रसः क्लेदो द्रवत्वं स्नेहसौम्यता।
जिह्वा विस्यन्दनं चापि भौमानां श्रपणं तथा॥ (शान्तिपर्व-255/4)।

अर्थात् 1. शीतलता, 2. रस, 3. क्लेद (गलाना या गीला करना), 4. द्रवत्व (पिघलना), 5. स्नेह (चिकनाहट), 6. सौम्यभाव, 7. जिह्वा, 8. टपकना, 9. ओले या बर्फ के रूप में जम जाना एवं 10. पृथ्वी से उत्पन्न होनेवाले खाद्य पदार्थ (चावल, दाल आदि को) आदि को गला देना –ये दस जल के गुण हैं। जल ठोस बर्फ के रूप में, तरल (पानी) के रूप में तथा गैस (बाष्प) के रूप में-तीनों अवस्थाओं में पाया जाता है। शुद्ध जल को न्यूट्रल (न क्षारीय और न अम्लीय ही) माना जाता है- 25 डिग्री सेल्शियस (77 डिग्री फारेनहाईट) पर शुद्ध जल का ph 7.0 के आसपास होता है, इससे कम ph होने पर जल अम्लीय तथा ज्यादा होने पर क्षारीय हो जाता है।

वर्षा होने के कतिपय लक्षण

- वैसे ऋतुचक्र के प्रवर्त्तक सूर्यदेव जब आर्द्रा में प्रवेश करते हैं, तभी से वर्षा ऋतु का प्रारम्भ माना जाता है।
- जब चिड़ियाँ धूल में आनन्दित होकर स्नान करने लगें।
- चीटियाँ अपने अण्डों को सुरक्षित स्थान में पहुचाने लगें।
- मयूर उल्लासित हो उठे।
- नमक पसीजने लगे।
- चन्द्रमा के आसपास वलय दिखाई पड़ते हों।
- मेढक टर्टराने लगें।

ऐसे सूचक हैं जिनसे यह पता चलता है कि वर्षा होनेवाली हैं।

जल ही सृष्टि का प्रथम सोपान है। इसी जल से कमलोद्भव ब्रह्माजी का प्रादुर्भाव हुआ है। किसी व्यक्ति का 'पानी चला गया' तो समझा जाता है कि अब उसके पास कुछ नहीं। किसी की प्रतिष्ठा को भी 'पानी रखना' कहकर संकेत करते हैं। 'पानी चढ़ाना' मतलब तेज धार करना, 'पानी उतरना' का अर्थ किसी के तेज का कुण्ठित हो जाना, 'पानी-पानी होना' अर्थात् लज्जित होना आदि जैसे मुहाबरे दैनन्दिन में प्रयोग होते हैं। इतना होने के बाद भी पानी के गुण-धर्म से हम एकाकार नहीं हो पाते। पिछले प्रकरणों में जल के गुणों की चर्चा की गयी है, जिसमें शीतलता, स्नेह, सौम्यता जैसे गुणों का समावेश है। उदाहरणतः पानी में पानी मिल जाय तो सब पानी हो जाते हैं, लहरों से लहर मिलकर लहर बन जाती है- जहाँ कहीं अलगाव नहीं, सभी एकाकार हो जाते हैं। यह जल का आकस्मिक गुण नहीं बल्कि मनोवृति है। क्या हम इन गुणों को अपनाकर सामाजिक सद्भाव का उदाहरण नहीं प्रस्तुत कर सकते। स्मरण रहे कि राजर्षि भागीरथ ने गंगा को स्वर्ग से पृथ्वी पर लाया था, इनके इस प्रयास को 'भागीरथी प्रयास' का नाम दिया जाता है। जल का स्थान आज जमीन के नीचे हो गया है, लेकिन हमने उसे और नीचे करने का कार्य किया है। जहाँ जल सुबकते हुए एवं आवाज लगाते हुए कहती है -है कोई भागीरथ ! जो मुझे अपने प्रयास से जमीन के उपर लाकर मेरी निर्मलता, निरन्तरता की रक्षा कर पाने में सक्षम हो | पूर्वकाल में तो मैंने अनेकों का उद्धार किया। क्या इस कलिकाल में मुझे मात्र बोतलों में बन्द कर रखोगे? मेरी सरलता और सरसता को उपभोक्ता की दृष्टि से मत देखो। अपना पानी (प्रतिष्ठा) बचाओ, मैं प्रकृति का एक अंग हूँ। उसके रक्षक, संरक्षक बनो। मैं नहीं तो संस्कृति नहीं, मैं नहीं कुम्भ नहीं। मैं नहीं तो जन्मस्नान और मृत्युस्नान नहीं। मैं नहीं देवों के मस्तक पर जलाभिषेक नहीं।

अतः हमें जल की इस पुकार को सुनना ही होगा। कहीं ऐसा न हो कि ये सभी चीजें आने वाले दिनों में अप्रासंगिक हो जाय।

जल का सम्मान बढ़ायें, प्रकृति को अनुकूल बनायें

***

नदियों, जलस्रोतों के संरक्षण की आवश्यकता

श्री राजीव नंदन मिश्र 'नन्हें'

सांख्य-दर्शन में तो स्पष्ट रूप से प्रकृति और पुरुष के कारण सृष्टि की उत्पत्ति के क्रम में प्रकृति को हमारी माता माना गया है। वहाँ सूक्ष्म प्रकृति है, लेकिन दिखाई पड़नेवाली स्थूल प्रकृति भी हमें माता के समान पालती-पोसती है। जल रूप 'जीवन' देने के लिए वह कभी गंगा-जैसी नदी बनती है तो कभी जंगलों में वृक्ष के अंदर हम प्यासे लोगों के लिए जल धारण करती है।

सनातन धर्म के अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड के प्राणी या समस्त प्रकृति पाँच तत्त्व से मिलकर बना हैं।श्रीरामचरितमानस के अनुसार भगवान् श्री राम ने स्वयं तारा को व्याकुल देखकर उनकी अज्ञानता का नाश करते हुए ज्ञान प्रदान किया। गोस्वामी तुलसीदासजी ने लिखा है:-

"क्षिति जल पावक गगन समीरा। पञ्च रचित अति अधम शरीरा॥"

अर्थात इस अधम शरीर की रचना क्षिति (पृथ्वी),जल (पानी), पावक (अग्नि), गगन (आकाश) और समीर (वायु) पञ्चतत्त्वों से हुई हैं। इनके बिना जीवन की कल्पना व्यर्थ हैं। इनमें जल का महत्व हमारे दैनिक जीवन में बहुत ही महत्वपूर्ण है। जल हमारे शरीर को आधे से अधिक वजन को बनाता हैं। लगभग हमारे शरीर में जल की मात्रा लगभग 60 प्रतिशत है। पूरी पृथ्वी का एक तिहाई भाग जल ही है। हमारे शास्त्रों में जल के अधिपति अर्थात देवता के रूप में वरुण देव को बताया गया है। वरुण देव की पूजा बड़े श्रद्धा के साथ किया जाता रहा है। पुरातन समय से ही जल के समस्त श्रोत यथा- नदियाँ, तालाब, कुएँ आदि की पूजा प्रचलित रही हैं। समुद्र के देवता, विश्व के नियामक, ऋतु परिवर्तन एवं जिनसे दिन-रात होता है उसके कर्ता-धर्ता के रूप में वरुण देव को बताया गया है। प्राचीन वैदिक धर्म में वरुण देव का स्थान बहुत महत्वपूर्ण था। इन्हें नैतिक शक्ति का महान पोषक माना गया है।

भागवत पुराण के अनुसार वरुण देव के पिता कश्यप ऋषि एवं माता अदिति है। वरुण देव की सवारी मकर अर्थात मगरमच्छ है। पुराणों में वरुणदेव की गिनती दस दिक्पालों में की गई है वे पश्चिम दिशा के अधिपति माने गये है। वरुण देवता ऋतु के संरक्षक के रूप में जाने जाते थे इसलिए इन्हें "ऋतस्य गोप" भी कहा जाता था। पुराणों में वरुण के साथ मित्र का भी उल्लेख कई बार मिलता है। इनदोनो को भाई बताया गया है। इन दोनों को साथ होने से एक शब्द में मित्रावरुण' कहा गया है। वरुणदेव जहाँ सागर के ऊपरी क्षेत्रों, नदियों एवं तटरेखा पर शासन करते हैं तो वही मित्र सागर आदि के गहराइयों से सम्बन्धत है। स्कन्दपुराण में बताया गया है काशी स्थित मित्रावरुण नामक दो शिवलिंगों की पूजा करने से मित्रलोक एवं वरुणलोक की प्राप्ति होती है।

हमारा इतिहास गवाह है कि संसार के सभी सभ्यताओं का उद्भव एवं विकास नदियों के किनारे ही हुआ है। कहने का तात्पर्य यह है जीवन-यापन में जल की अहम भूमिका है। कोई भी मनुष्य को पीने के लिए जल,खेती के लिए जल,पालक-पशुओं के लिए जल दूर ले जाना मुश्किल था। तब आज इतनी सुविधाएँ भी नहीं थी इस कारण लोग नदियों के किनारे रहते थे। धीरे-धीरे लोगों का एक समूह

युवा कवि व लेखक, ग्राम व पोस्ट-सरना, थाना-शाहपुर,जिला-भोजपुर, बिहार-802165, मो.-7004235870, Email- mrrajeevnandan@gmail.com

बन जाता था। यही बढ़ते बढ़ते गाँव-नगर आदि का रूप ले लेता था। फिर जिस जगह रहे अपनी सभ्यता बन जाती थी। प्राचीन सभ्यता सिंधु घाटी, मेसोपोटामिया की सभ्यता आदि सभी नदियों किनारे ही पली-बढ़ी। सुमेरियन सभ्यता जिसे प्राचीन में मेसोपोटामिया कहा जाता था जो अब आधुनिक इराक है। वहाँ जल के देव को 'एनकी' कहा जाता था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार मोहन जोदड़ों का "महान स्नानगृह" इस बात का एक अद्भुत प्रमाण है की जल का काफ़ी महत्व था एवं इस टैंक का उपयोग विशेष धार्मिक अनुष्ठानों के लिए किया गया था। इसे विद्वानों द्वारा "प्राचीन विश्व का सबसे पुराना सार्वजनिक जल टैंक" के रूप में माना जाता है। बेबिलोनियन सभयता के अनुसार वहाँ के लोग भी जल देव की पूजा करते थे। मिस्र के लोग नील नदी, पृथ्वी और हरियाली तीनों की मिली-जुली शक्तियों का प्रतीक ओसिर (ओसाइरिस) नाम से जल देवता का पूजन करते थे। ग्रीक के लोग पोसाइडन/ पोसाइडान को जल एवं समुन्द्र देवता मानते थे। वरुण ही पारसी पंथ में "अहुरामज़्दा" कहलाए। रोमन पौराणिक कथाओं में नेप्च्यून एक देवता हैं, जिन्हें ताजे पानी और समुद्र का अन्तम अधिकार माना जाता था। जैन धर्म के लोग तो पानी को जीव मानते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि समस्त प्राचीनकाल में विकसित सभी सभ्यताओं में जल का पूजन होता था। विभिन्न धर्मों के लोग प्राचीन समय से ही जल का पूजन करते रहे हैं। सर्वप्राचीन वेद ऋग्वेद के मित्र और वरुण के साथ "आप" भी प्राप्त होता है जिसका अर्थ जल होता है। वरुण देव की पूजा ज्येष्ठ माह में की जाती है। वरुण देव की पूजा गंगा की पूजा के साथ होती है। इनके पूजन से सभी रोगों का नाश, मनोकामनाओं की पूर्ती तथा दुखों का नाश होता है।

गंगा दशहरा का पर्व

गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी इन सात नदियों को सांस्कृतिक आधार पर महत्वपूर्ण माना गया हैं परंतु समस्त ब्रह्माण्ड में गंगा नदी जैसा पवित्र जल किसी अन्य नदी का नहीं है। प्रत्येक वर्ष हम सभी देवी गंगा का पूजन बड़े उत्साह के साथ करते है।

पृथ्वी पर गंगा का आगमन ज्येष्ठ मास के दशमी तिथि को हुआ था। यह दिन स्वर्ग से पृथ्वी पर माँ गंगा का आगमन का दिन है। इसी कारण इसे गंगा दशहरा के रूप में मनाया जाता है। इस दिन श्रद्धालु विशेष रूप से गंगा में डुबकी लगाते है। उसके बाद पूजन एवं दान करते है। हालांकि इस वर्ष 2021 में कोरोना महामारी के कारण ढेरों श्रद्धालुओं को गंगा-स्नान से वंचित रहना पड़ जायेगा। परन्तु घर पर ही स्नान के जल में गंगाजल मिलाकर स्नान करना चहिए। हमारे शास्त्रों में गंगा की इतनी महता बतायी गयी है कि गंगा का एक बूंद जल अगर सामान्य जल से मिल जाता है तो वो सारा सामान्य जल गंगा जैसा पवित्र हो जाता है। वैसे तो यह भी सत्य है कि गंगा नाम के श्रद्धापूर्वक स्मरण मात्र से भी मनुष्य के पाप नष्ट हो जाते हैं।इस दिन गंगा स्नान-पूजन से कई जन्मों का पाप नष्ट हो जाता है। पुण्य का उदय होता है। घर में सुख,शान्ति,समृद्धि का वास होता है।जो जिस इष्ट कामना से गंगा दशहरा के दिन सच्चे मन से स्नानादि करता है उसकी समस्त कामनाएँ शीघ्र पूर्ण हो जाती है। माँ गंगा का स्वरूप अपने चित में धारण करना शुभ फलदायी है।

इनके तीन नेत्र है,चार भुजाएँ है चारों भुजा दिव्य कलश, श्वेतकमल, वरद और अभय से सुशोभित हैं।देवी श्वेत वस्त्र धारण की है।सौम्य एवं सुरम्य है। मुक्तामणियों से विभूषित है।तीनों लोकों में पूजित एवं प्रतिष्ठित है।आशीष से पापों का नाश कर पुण्य का उदय करने वाली देवी के मुखमण्डल पर प्रसन्नता है। माँ की सवारी मकर (मगरमच्छ) हैं। ऐसी पापनाशिनी देवी को बारम्बार नमस्कार है।

देवी गंगा का एक पवित्र मन्त्र है- '**ॐ नमो भगवति हिलि हिलि मिलि मिलि गंगे माँ पावय पावय स्वाहा**'। जिसका अर्थ है -हे भगवती गंगे!मुझे बार-बार मिलिए अपनी कृपा से पवित्र कीजिये, पवित्र कीजिये।

गंगा नदी की सफाई का भी हमें अपने जीवन में ध्यान रखना चाहिए।उनकी निर्मलता को बचाये रखना हमारा कर्तव्य है। अगर साफ-सफाई का ध्यान नहीं रखते तो स्नान-पूजनादि किस काम का? गंगा है तो निर्मलता है, गंगा है तो भारत की

श्रेष्ठता है। गंगा से ही हर तीर्थ है। गंगा ही ऋषि-महर्षियों का विश्वास है। स्वयं श्री कृष्णजी ने गीता में कहा है नदियों में मैं स्वयं श्री भागीरथी गंगाजी हूँ। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि सभी धार्मिक ग्रंथों में गंगा की महिमा प्राप्त होता है। समस्त पूजन कर्म, यज्ञादि में गंगा जल का प्रयोग होता है।

स्कन्दपुराण में एक श्लोक प्राप्त होता है-

स्नानकालेऽश्रन्यतीर्थेषु जप्यते जाह्नवी जनैः। विना विष्णुपदीं कान्यत् समर्था ह्यघशोधने॥

अर्थात् अन्य तीर्थों में स्नान करते समय भी गंगा का नाम ही लोग जपा करते हैं, गंगा के बिना अन्य पाप धोने में कौन समर्थ है?

हमारा विज्ञान भी गंगा के जल की गुणवत्ता को स्वीकार करता है। वैज्ञानिको के अनुसार गंगा में बैक्टीरिया को मारने की क्षमता है। बीमारी पैदा करने वाले जीवाणुओं को भी नष्ट करता है। गंगा का जल लंबे समय तक बन्द रखने के बाद भी सड़ता नही हैं। इतिहासकारों ने लिखा है कि भारत जब गुलाम था उस समय अंग्रेज़ कलकत्ता से इंग्लैंड जाने के क्रम में पीने के लिए जहाज में गंगा का पानी ले जाते थे वह सड़ता नहीं था जबकि अन्य पानी सड़ जाता था। वे जो पानी इंग्लैंड से भारत आने के क्रम में प्रयोग करते थे वह रास्ते में ही सड़ जाता था। इतिहासकारों के अनुसार अकबर सम्पूर्ण जीवन जल के रूप में गंगा का ही पान करता रहा। अकबर के महल से गंगा नदी काफी दूर थी इसलिए उसने केवल गंगाजल लाने के लिए सैनिकों की अलग एक टुकड़ी नियुक्त कर रखी थी। रुमर गौडेन अपनी पुस्तक 'गुलबदन' में लिखे है कि अकबर गंगा के पानी के अलावा कहीं और का पानी नहीं पीते थे। नदी दूर होने के बावजूद उनके सेवक अपने बादशाह के लिए गंगाजल लाया करते थे। गंगा में बहुत से उपयोगी खनिज व तत्त्व भी मिलते है।

राष्ट्रीय लब्ध प्रतिष्ठित कवि श्री नरसिंह नारायण पाण्डेय "चञ्चल बलरामपुरी" (अयोध्या,उत्तरप्रदेश) ने गङ्गा माँ का 52 छन्दों में विशद वर्णन किया है जिसमे से एक छन्द द्रष्टव्य है-

विष्णु-पदाम्बुज की मकरन्द, अमन्द-अनन्द तरङ्गित गङ्गा !
ब्रह्म-कमण्डल की उद्भूत, प्रभा-अभिभूत उमङ्गित गङ्गा !!
पाप के ताप की शाप निवारक, पावन-पुण्य-सुरञ्जित गङ्गा !
नन्दन की अभिनन्दिका चारु, सुचन्दन चर्चित वन्दित-गङ्गा!!

ऋग्वेद में कहा गया है- **'अप्सु अन्तः अमृतं, अप्सु भेषजम्'।**

अर्थात् जल में अमृत है। इसमें औषधि गुण हैं। ऐसे में जरूरत है जल की शुद्धता को बनाए रखना।

जल देनेवाला अद्भुत वृक्ष

हमारी प्रकृति ने हमें उपहारस्वरूप बहुत कुछ दिया है। बहुत तो ऐसे भी प्रदत्त उपहार है जिसकी हमें जानकारी ही नहीं पर शोध एवं खोज के आधार पर नवीन जानकारियाँ हम सभी को प्राप्त होती है।

हमारी पृथ्वी पर अनेक वृक्ष है जो प्राणिजगत के लिए बहुत आवश्यक है। हम सभी जानते है इनसे हमें आक्सीजन जैसे बहुमूल्य जीवन रत्न प्राप्त हो पाता है। वृक्षों से लकड़ियाँ, फल,फूल और छांव देकर इंसानों की आवश्यकताओं को पूरा करते है। पीपल, आम, नीम, शीशम, बरगद अन्य इसके उदाहरण स्वरूप है।

इन सबके बावजूद एक पेड़ ऐसा भी है जो हमे जल प्रदान करता है। यह पानी पीने लायक होता है इससे थोड़ा नहीं बल्कि इतना पानी मिलता है कि लोग इसे पीकर अपना प्यास बुझा सकते है। जिस प्रकार हमारे घरों में नल खोलने पर पानी निकलता है ठीक उसी प्रकार इसपर कट लगाने से इससे पानी प्राप्त होता है। सुनकर थोड़ा आश्चर्य जरूर लग रहा पर यह सत्य है।इस पेड़ का नाम आसन है।आसन वृक्ष के कई अन्य भी नाम है-असना, साज।विज्ञान की भाषा में इसे "Terminalia Tomentosa" कहते हैं। इस वृक्ष के तने पर जब कट लगाया जाता है तो पानी की धार निकलती है।

सभी पौधे पानी को अपनी जड़ में बाँध कर रखते हैं पर यह अपने तने में पानी भरकर रखता है। इस पेड़ को मगरमच्छ का पीठ वाला पेड़ भी कहा जाता है क्योंकि इस पेड़ की छाल बहुत मोटी होती है। यह बृहद आकार का पर्णपाती लम्बा तथा सीधा वृक्ष होता हैं। यह पेड़ दक्षिण भारत में पाया जाता है। तमिलनाडु के जंगलों में ये ज्यादा मिलते है।इसकी औसत ऊँचाई लगभग 30 से 35 मीटर तक होती है। इसे भिन्न-भिन्न भूमि पर उपजाया जा सकता है परंतु जलोढ़ व गहरी भूमि में यह अपने सही आकार को प्राप्त करता है अर्थात जलोढ़ मिट्टी में इसको उपजाना सर्वोत्तम हैं। भारत के बांदीपुर राष्ट्रीय उद्यान में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार, ये पेड़ पौधे के तने के अनुपात में एक निश्चित मात्रा में पानी जमा करते हैं।

ऐसे ही हमारी प्रकृति असंख्य सम्पदाओं को हमसभी को उपहारस्वरूप प्रदान की है। हमें प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करना या उसके विपरीत चलना हमसब के लिए खतरे की घंटी है। हम सभी को भविष्य के लिए सजग रहना होगा। प्रकृति से छेड़छाड़ का ही नतीजा है कि कई क्षेत्रों में जल का अभाव हो गया है। लोग जल के लिए तरस रहे है।

रहिमन "पानी" राखिए, बिन "पानी" सब सून। "पानी" गए न ऊबरे मोती मानुष चून॥

सैकड़ो वर्ष पुराना यह दोहा रहिमजी का है जिसे कक्षाओं में पढ़ाया जाता रहा है। भले ही यह दोहा नीतिवाद से प्रेरित रहा है लेकिन आज यह सच साबित होते दिख रहा हैं।

चिपको आन्दोलन के प्रणेता सुन्दर लाल बहुगुणा* ने पेड़ों को बचाने के लिए आन्दोलन किये। पर्यावरणविद् सुंदरलाल बहुगुणा ने पानी संकट को लेकर सजग करते हुए कहा है कि अगला विश्वयुद्ध पानी को लेकर लड़ा जा सकता है। जल की इस समस्या से बचने के लिए हम सभी को जल संरक्षण पर ध्यान देना चाहिए। जल संरक्षण का अर्थ है जल के प्रयोग को घटाना एवं सफाई, निर्माण एवं कृषि आदि के लिए अवशिष्ट जल का पुनश्चक्रण अर्थात् उनका पुनः उपयोग। भू-जल स्तर की गिरावट को बचाने उसमें सुधार के लिए भूमि में वर्षा जल का संचय करना चाहिए।वर्षा ऋतु में जल संचयन और छोटे तालाबों में भंडारण करना चाहिए। ये जल गर्मियों के दौरान खेतों में पानी की आपूर्ति में हमारे मददगार साबित होंगे। नदियों, तालाबों, अथवा समुद्र में कूड़ा नहीं फेंकना चाहिए एवं फैक्ट्री से निकले अपशिष्ट कचरे को नदियों में जाने से रोकना चाहिए। आइए हम सभी मिलकर जल पूजन के साथ-साथ गंगादि नदियों, तालाबों आदि जलस्रोतों के साफ-सफाई बनाये रखे एवं संरक्षण में स्वयं के कल्याण के लिए स्वयं का योगदान सुनिश्चित करें।

पतितपावनी पापनाशिनी पावन जल तव हे गंगे!
धरा सुशस्य सुरम्य बनाती निर्मल-ललित तरंगे!
दिव्य-कलश श्वेताम्बुज शोभित "मकरासन" संगे!
"माँ" भव सागर पार उतारे, प्रणत-प्राणि स्वर "हर हर गंगे"!!

***

*अत्यन्त शोक का विषय है कि इसी मास दिनांक 21 मई, 2021 को उनका निधन हो गया है। श्रद्धांञ्जलि!- सम्पादक

आचार्या कीर्ति शर्मा*

ज्योतिष में भूगर्भीय जल का ज्ञान

पृथ्वी के तल पर उगी वनस्पति तथा एक निश्चित गहराई पर मिले चिह्न के आधार पर भू-गर्भ जल की खोज के लिए वराहमिहिर ने पर्याप्त विवेचन किया है। इसे उन्होंने 'बृहत्संहिता' के 54वें अध्याय में दकार्गल नामक ध्याय में 125 श्लोकों में लिखा है। आचार्या कीर्ति शर्मा ज्यौतिष की अध्येत्री तथा अध्यापिका रहीं हैं। राजस्थान-जैसे जल-संकट वाले क्षेत्र से हैं। इनके इस पृथक् आलेख का यहाँ स्वागत है। लेखिका को असीम शुभकामनाएँ!

आचार्य वराहमिहिर के ग्रन्थ 'बृहत्संहिता' में वास्तुविद्या में जिस विद्या के ज्ञान से भूमिगत जल का ज्ञान किया जाए उस ज्ञान को 'दकार्गल' कहा गया है। 'बृहत्संहिता' के 54वें अध्याय में कुल 125 श्लोकों में इसका विस्तार से वर्णन है। जिस तरह मनुष्य के शरीर में नाड़ियाँ है, ठीक उसी तरह भूमि में भी ऊँची-नीची शिराएँ हैं। आकाश से केवल एक स्वाद वाला जल पृथ्वी पर गिरता है। किंतु वही जल पृथ्वी की विशेषता से अलग अलग स्थान पर अनेक प्रकार के रस और स्वाद वाला हो जाता है। इसी तरह से अलग-अलग भूमि के रस और वर्ण के अनुसार जल के वर्ण और रस सिद्ध होते हैं।

एक बार किसी ने एक महात्मा जी से पूछा कि सनातन की सबसे बड़ी विशेषता क्या है? महात्मा जी ने तुरंत उत्तर दिया 'जलप्रियता' अर्थात् सनातन में जल के हर कार्य के उपयोग में लिया जाता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक कोई भी उत्सव, पूजा, यज्ञ, निर्माण कार्य इत्यादि जल के बिना असम्भव है। केवल सनातन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जहाँ जल को देवता की संज्ञा दी गई है और यज्ञादि कार्यो में जल देवता अर्थात् वरुण देवता को अन्य सभी देवताओं की तरह आहुति दी जाती है।

कोई भी निर्माण कार्य प्रारम्भ करने से पहले उस भूखण्ड पर जल का स्रोत क्या होगा, यह एक विचारणीय प्रश्न होता है और जब बात होती है उस भूखण्ड पर बोरिंग बनवाने की तो सर्वप्रथम ये प्रश्न उठता है कि जल का बोरिंग किस स्थान पर खुदवाना प्रारम्भ किया जाए, ताकि समय और पैसा दोनो ही व्यर्थ न हों और जल की प्राप्ति भी समुचित हो जाये।

वैदिक ज्योतिष के प्रमुख ग्रन्थ आचार्य वराहमिहिर द्वारा रचित 'बृहत्संहिता' के 'दकार्गल' नामक अध्याय में पूर्व आदि आठों दिशाओं के क्रम से इंद्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, वायु, चन्द्र और शिव स्वामी हैं। इन दिशा अधिपतियों के नाम से आठ शिराये प्रसिद्ध है। इन आठ शिराओं के मध्य में महा शिरा नाम की नवमी शिरा है। इन नौ शिराओ के अतिरिक्त पृथ्वी के नीचे सैकड़ो शिराएँ निकली हुई हैं, जो अपने-अपने नाम से प्रसिद्ध हैं। इसके बाद पृथ्वी के नीचे स्थित जल का ज्ञान करवाने के लिए कुछ शिराओं और वृक्षों वृक्षो के बारे में बताया गया कुछ दिशाओं के बारे में बताया गया है।

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्योऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः।
पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः॥
एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्।
नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्य क्षितितुल्यमेव॥

भूखण्ड में यदि जामुन का वृक्ष हो और उसके पूर्व दिशा में साँप की बांबी हो तो उस के तीन हाथ दक्षिण दिशा में दो पुरुष नीचे मीठा जल प्राप्त होता है। एक पुरुष का प्रमाण120

*प्राध्यापक एवं ज्योतिषाचार्या, अध्यक्ष, ज्योतिष वेदवेदांग संस्कृत संस्थान, 82/71-72 प्रतापनगर सांगानेर, जयपुर 302033

अंगुल होता है। आधा पुरुष प्रमाण नीचे मछली के रंग का और उसके नीचे कबूतर के समान रंग वाला पत्थर निकलता है तथा इस खात की मिट्टी नीले वर्ण की होती है और यहाँ बहुत लंबे समय तक जल रहता है।

जम्बुवृक्षस्य प्रागवल्मीको यदि भवेत् समीपस्थ:। तस्मादक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु॥
अर्धपुरुषे च मत्स्य: पारावतसन्निभश्च पाषाण:। मृद्भवती चात्र नीला दीर्घ कालं च बहु तोयम्॥

इसी तरह यदि भूखण्ड में बेर का वृक्ष हो और उस वृक्ष के पूर्व दिशा में कोई वल्मीक हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में तीन पुरुष नीचे जल होता है अर्थात 360 अंगुल नीचे यहाँ पर आधा पुरुष नीचे छिपकली निकलती है।

पूर्वेण यदि बदर्या वल्मीको दृश्यते जल पश्चात्। पुरुषेस्त्रिभिर्देशय श्वेता ग्रहगोधिकद्वनरे॥

यदि भूखण्ड में ढाक के वृक्ष से युक्त बेर का वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ पश्चिम दिशा में सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है। यहाँ पर एक पुरुष नीचे विषहीन सर्प मिलता है।

यदि वल्मीक से युक्त सप्तपर्ण वृक्ष हो तो उससे एक हाथ उत्तर पाँच पुरुष नीचे जल होता है।यहाँ पर भी वक्षयमाण चिन्ह मिलते हैं। जैसे आधा पुरुष नीचे हरा मेंढक, उसके बाद हरताल के समान पीली भूमि,उसके नीचे बादल के समान काला पत्थर और उसके नीचे मधुर जल प्राप्त होता है।

यदि भूखण्ड में कोई वृक्ष हो और उस वृक्ष की एक शाखा नीचे की और झुकी हुई हो या पीली पड़ गई हो तो इस शाखा के नीचे तीन पुरुष खोदने से जल की प्राप्ति होती है।

यदि काँटो से विहीन और सफेद पुष्पों से युत कटेरी का का वृक्ष दिखता है तो उस वृक्ष के नीचे साढ़े तीन पुरुष खोदने से जल प्राप्त होता है।

जिस भूखण्ड में दो शिराओ वाला खजूर का पेड़ हो उस वृक्ष से दो हाथ पश्चिम दिशा में खोदने पर तीन पुरुष नीचे जल मिलता है। जिस खेत में धान्य उतपन्न होकर नष्ट हो जाये,बहुत निर्मल धान्य हो या उतपन्न होकर पीला पड़ जाए वहा दो पुरुष नीचे बहुत जल बहने वाली शिरा प्राप्त होती है।

यस्मिन् क्षेत्रोद्देशे जातं सस्य विनाशमुप्याति। स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र॥

जहाँ पाँव से आवाज करने से भारी शब्द हो वहाँ साढ़े तीन पुरुष नीचे जल और उत्तर में जल शिरा होती है।

जहाँ पर चिकने छिद्र रहित पत्तों से रहित वृक्ष या लता होती है वहाँ तीन पुरुष नीचे जल प्राप्त होता है। जहाँ पर एक पर्वत के ऊपर दूसर पर्वत हो उस भूमि पर भी तीन पुरुष खोदने पर जल की प्राप्ति हो जाती है।

जिस भूमि में कबूतर के रंग का, शहद के रंग का या घृत के रंग के समान रंग वाला पर्वत हो वहाँ कभी भी नष्ट नही होने वाला जल शीघ्र प्राप्त होता है।

जहाँ बड़ पीपल गूलर ये तीनो वृक्ष इकट्ठा हो वहाँ इन वृक्षों के नीचे तीन हाथ खोदने पर जल प्राप्त होता है। पत्थर के कणों से मिली हुई ताम्र वर्ण की भूमि में कसैला,पीली भूमि में खारा पांडुरंग की भूमि में नमकीन और नीली भूमि में मीठा जल होता है। जहाँ की भूमि पावँ रखने से दब जाए बहुत कीड़े हो जबकि वहाँ उनके रहने का स्थान नही हो ऐसी भूमि पर डेढ़ पुरुष नीचे जल मिल जाता है। करीर के बृक्ष के साथ बेर का वृक्ष लगा हुआ हो तो उन वृक्षों से तीन हाथ पर पश्चिम दिशा में अठारह पुरुष नीचे ईशान कोण में बहने वाली और बहुत जल वाली शिरा अवश्य होती है।

सकरीरा चेद्वदरी त्रिभि: करै: पश्चिमेन तत्राम्भ:। अष्टादशभि: पुरुशैरैशानी बहुजला च शिरा॥
वल्मीकमूर्धनी यदा दूर्वा च कुशाश्च पांडुरा:सन्ति। कूपो मध्ये देयो जलमत्र नैरकविंशत्या॥
भूमि: क़दम्बयुता वल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा। हस्तद्वयेन याम्ये नरैर्जलं पञ्चविंशत्या॥

यदि वल्मीक के ऊपर दूब या सफेद कु शा होती है तो वल्मीक के नीचे खोदने पर इक्कीस पुरुष नीचे जल मिलता है।

जिस भूमि में क़दम्ब और वल्मीक के ऊपर दूब दिखाई दे वहाँ कदम्ब वृक्ष से दक्षिण दो हाथ पर पच्चीस पुरुष नीचे अवश्य जल की प्राप्ति होती है।

धतूरा वृक्ष के उत्तर में वल्मीक हो तो उस वृक्ष से दो हाथ दक्षिण में पन्द्रह पुरुष नीचे जल मिलता है परंतु इस खुदाई में खारा जल प्राप्त होता है। तथा आधा पुरुष नीचे नेवला, ताम्रवर्ण का पत्थर और लाल रंग की मिट्टी निकलती है। इस भूमि में दक्षिण शिरा से जल की प्राप्ति होती है।

हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनो उत्तरा, रोहिणी, शतभिषा, इन नक्षत्रों में बोरिंग या कुआँ खुदवाना शुभ होता है।

आचार्य वराहमिहिर ने पानी की मौजूदगी बताने वाले अनेक लक्षण इस अध्याय के बताए है पानी की मौजूदगी के साथ साथ पानी की गहराई के लक्षण भी इस ग्रन्थ में बता दिये गए हैं। वराहमिहिर ने आज से 1500 वर्ष पूर्व भूमि के अंदर स्थित जल की स्थिति जानने के लिए अवश्य ही भूमि के अंदर नमी में रहने वाले जीवों का गहन अध्ययन किया होगा कि कौनसे जीव नम भूमि में अधिक पाए जाते हैं और सम्भवतः इसीलिए उन्होंने भूखण्ड के नीचे सर्प नेवला मेंढक इत्यादि की उपस्थिति भी बताई है। आचार्य ने इन्हीं जीवों को भूमि में जल का संकेतक माना होगा।

आचार्य वराहमिहिर के समय में भारत की धरती का जल चक्र सामान्य था एवं भू-जल का दोहन लगभग नगण्य था। इसलिये, उस कालखण्ड की परिस्थितियों के अनुसार वराहमिहिर की भविष्यवाणियों में भू-जल को कम गहराई पर मिलते दर्शाया हैं। आज हालात बहुत बदल गये हैं, भू-जल का दोहन तेजी से अतिदोहन की ओर बढ़ रहा है। इन बदली हुई परिस्थितियों में आचार्य वराहमिहिर के समय के कम गहराई विषयक मानकों का पूरी तरह बदल जाना सामान्य घटना है।

***

पाठकीय प्रतिक्रिया, पृ. 02 से शेषांश

महत्ता व विशिष्टता का प्रतिपादन सरल सामान्य जन हेतु सहज भाषा में प्रतिपादित करती है।

महामहोपाध्याय पं. गोपीनाथ कविराज की ज्ञान-गंगा के एक बूंद से यह पत्रिका अत्यन्त पवित्र व पूजनीय हो गयी। अद्भत रामायण में भगवती सीताजी के अद्भुत स्वरूप पर लेख शक्ति और शक्तिमान के परस्पराश्लिष्ट वपु का वर्णन करते हुए शक्ति के विशिष्ट स्वरूप का अत्यन्त शोधप्रद विवेचन करता है।। इसमें जो सीता माता जीके सौम्य रूपोपासक हैं, उनके लिए तो पाठ्य-सामग्री है ही अपितु जो शक्ति के परमरहस्यमय स्वरूप का चिन्तन करते हैं उनके लिए भी पर्याप्त सामग्री है। जनकभूमि की परिक्रमा से अनभिज्ञ जनों के हितार्थ मानचित्र व उसका विस्तृत वर्णन करता लेख अत्यन्त सराहनीय व सामान्य जन का हितसाधक है। वेंकट कवि की कृति सन्दरजाये का गम्भीर अनुशीलन एक शास्त्र संरक्षण हेतु उठाया गया महत्त्वपूर्ण लेख है। वस्तुतः सभी लेख अत्यन्त गम्भीर तत्त्व विमर्श से ओतप्रोत है। इस क्रम में डॉ. सुदर्शन श्रीनिवास शाण्डिल्य का अत्यन्त गहन शोध का प्रमाण भगवती-तत्त्व विमर्श का मान यदि न लिया न लिया जाये तो रत्न को छोड़कर पत्थर चुनने का दोष लगेगा। इसके सभी लेख अच्छे हैं। पं. मार्कण्डेय शारदेय की लेखनी से श्रीरामपट्टाभिषेक एक अत्यन्त समयोचित विवेचन है, जो सामान्य मनुष्यों ही नहीं अपितु पण्डितों का भी ज्ञान-वर्द्धन करने योग्य है। अद्भुत रामायण पर आचार्य सीताराम चतुर्वेदी का लेख, परशुरामकथामृत, सहस्रार्जुन वध, पुस्तक समीक्षा आदि से अलंकृत जनमानस को ज्ञान-विज्ञान के उन अछूते पहलुओं का स्पर्श देनेवाली धर्मायण पत्रिका को सम्पादक ने एक शिल्प का स्वरूप दिया है, जिसके शृंगारप्रिय को सौन्दर्य और अध्यात्मप्रिय को आध्यात्मिक लाभ मिल रहा है।

आशा है कि यह आगे भी इसी प्रकार हमारे डिजिटल कोष के साथ ही पुस्तकालय में भी शोभायमान रहे।

डॉ.अवध राम पाण्डेय

प्रधानाचार्य , श्री वंशीधर संस्कृत महाविद्यालय, सरायनन्दन, वाराणसी।

वाशिष्ठरामायण-कथा की

रामकथा
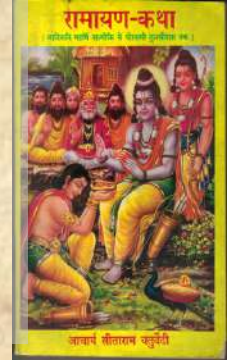
आचार्य सीताराम चतुर्वेदी

यह हमारा सौभाग्य रहा है कि देश के अप्रतिम विद्वान् आचार्य सीताराम चतुर्वेदी हमारे यहाँ अतिथिदेव के रूप में करीब ढाई वर्ष रहे और हमारे आग्रह पर उन्होंने समग्र वाल्मीकि रामायण का हिन्दी अनुवाद अपने जीवन के अन्तिम दशक (80 से 85 वर्ष की उम्र) में किया वे 88 वर्ष की आयु में दिवंगत हुए। उन्होंने अपने बहुत-सारे ग्रन्थ महावीर मन्दिर प्रकाशन को प्रकाशनार्थ सौंप गये। उनकी कालजयी कृति रामायण-कथा हमने उनके जीवन-काल में ही छापी थी। उसी ग्रन्थ से रामायण की कथा हम क्रमशः प्रकाशित कर रहे हैं।

- प्रधान सम्पादक

[महारामायण या योगवाशिष्ठ]

इस महाग्रन्थ को आर्ष रामायण, ज्ञान-वाशिष्ठ, महारामायण, वाशिष्ठरामायण या केवल वाशिष्ठ कहते हैं। यह ग्रन्थ वाल्मीकीय रामायणका उत्तरकाण्ड भी माना जाता है और महर्षि वाल्मीकि ही इसके रचयिता भी माने जाते हैं। यह ग्रन्थ छह प्रकरणों में विभक्त है- वैराग्य, मुमुक्ष, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण। इसमें राम और वशिष्ठके संवादके रूपमें जीवन, मृत्यु, सुख-दुःख, मुक्ति आदि सभी दार्शनिक विषयोंकी तात्त्विक मीमांसा की गई है।]

इसमें रामायणकी कथा इतनी ही है कि विद्या प्राप्त करके राम तीर्थयात्राके लिये निकल गए। वहाँसे लौटकर वे बहुत उदास और चिन्तित रहने लगे जिससे उनका शरीर बहुत दुर्बल हो गया। किसीके पूछनेपर भी उन्होंने कोई कारण नहीं बताया। उन्हें देखकर उनके भाई लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी चिन्तित रहने लगे। भरत वहाँ नहीं थे। वे पहले ही अपने नानाके यहाँ चले गए थे। एक दिन विश्वामित्रने आकर दशरथसे कहा कि मेरे यज्ञकी रक्षाके लिये रामको मेरे साथ भेज दीजिए। दशरथको बड़ा मोह हआ किन्तु वशिष्ठने दशरथको समझाया कि कृशाश्वने विश्वामित्रको जो अनेक दिव्यास्त्र दे रखे हैं, वे इनसे रामको मिल जायेंगे। विश्वामित्र ने केवल राम को ही माँगा था, लक्ष्मण को नहीं-

तं पुत्रं राजशार्दूल रामं सत्यपराक्रमम्।
काकपक्षधरं शूरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि॥

दशरथने कहा कि 9000 वर्षकी अवस्था होनेपर मुझे ये पुत्र हुए हैं, जिनमें राम मुझे बहुत प्यारे हैं। वशिष्ठके समझानेपर दशरथ मान गए पर उन्होंने कहा कि राम बड़े चिन्तित रहते हैं। विश्वामित्रने कहा कि आप उन्हें बुलायें तो सही, हम चिन्ता दूर किए देते हैं। राम के आने पर राम और वशिष्ठका आध्यात्मिक संवाद छिड़ जाता है और उसीकी समाप्तिके साथ ग्रन्थ समाप्त हो जाता है। विश्वामित्रके साथ राम गए या नहीं यह भी कहीं संकेत नहीं मिलता। आगेकी कथा इसमें है ही

नहीं। इसमें विश्वामित्रके आगमनकी कथा है, इसलिये यह उत्तरकाण्ड तो हो ही नहीं सकता। इसका उद्देश्य केवल अध्यात्म-निरूपण है, रामकथा नहीं।

योगवासिष्ठमें रामके अवतारके जो कारण दिए गए हैं, उनमें जलन्धरकी पत्नी वृन्दाके शापके अतिरिक्त अन्य सब कारण नवीन हैं-

1. जिन दिनों सनत्कुमार अपने पिता ब्रह्माके पास रहते थे उन्हीं दिनों एक दिन विष्णु वैकुण्ठसे वहाँ आ गए। उन्हें देखकर ब्रह्मा तथा अन्य सत्य-लोकवासियोंने उनकी बड़ी पूजा की किन्तु सनत्कुमार दम साधे चुपचाप बैठे रहे। इसपर विष्णुने उन्हें शाप दिया कि तू जो निष्काम और स्तब्ध हुआ बैठा है तो जा, तू शरजन्मा नामसे बड़ा कामी पुरुष होगा। तभी सनत्कुमारने भी विष्णुको शाप दिया कि आप जो वहुत सर्वज्ञ बने फिरते हैं तो आप भी कुछ समयतक अज्ञानी बने घूमेंगे (अपनी पत्नीके विरहमें रोते-कलपते फिरेंगे)।

2. एक बार जब विष्णुसे डरकर असुरोंने भृगुकी पत्नीकी शरण ली तब विष्णुने असुरोंपर जो चक्र चलाया उससे भृगुकी पत्नीका गला कट गया। इसपर भृगुने विष्णुको शाप दिया कि तुम्हें भी स्त्रीके वियोगमें वैसा ही कष्ट उठाना पड़ेगा जैसा मुझे पड़ रहा है।

3. पयोष्णी नदीके तीरपर बैठी हुई देवदत्त ब्राह्मणकी पत्नीको विष्णुने अपना नृसिंह रूप दिखाकर ऐसा डराया कि तत्काल उसके प्राण निकल गए। इसपर देवदत्त ने विष्णु को शाप दिया कि मुझे तुमने पत्नी से वंचित किया है तो तुम्हारा भी अपनी पत्नीसे वियोग होगा।

4. जब जलन्धर दैत्यको मारनेके लिये विष्णुने जलन्धरका रूप बनाकर उसकी पतिव्रता पत्नी वृन्दाका पातिव्रत्य भंग किया तब उसने भी यही शाप दिया कि तुम्हें मनुष्य जन्म लेना पड़ेगा और तुम्हारी पत्नीका भी हरण होगा।

प्रथम तीन शापोंके कारण रामको पहली बार रावण-द्वारा सीताके हरणसे पत्नी-वियोग सहना पड़ा, दूसरी बार मिथ्यापवादके भयसे सीताको वाल्मीकिके आश्रममें छोड़नेपर पत्नी-वियोग सहना पड़ा और तीसरी बार सीताके धरतीमें समा जानेपर पत्नी-वियोग भोगना पड़ा और वृन्दाके शाप से मनुष्य शरीर धारण करना पड़ा।

॥ वाशिष्ठरामायण सम्पूर्ण।

लेखकों से निवेदन

‘धर्मायण’ का अगला आषाढ़ मास का अंक इस बार भगवान् जगन्नाथ को समर्पित प्रस्तावित है। आषाढ मास की सबसे महत्त्वपूर्ण सनातनी गतिविधि भगवान् जगन्नाथ की रथ-यात्रा है। न केवल जगन्नाथ पुरी स्थित मूल मन्दिर में, अपितु बिहार के भी अनेक मन्दिरों में रथयात्रा का आयोजन आस्था के साथ होता है। देश में अनेक जगन्नाथ मन्दिर हैं, जहाँ मूल मन्दिर की परम्परा को सुरक्षित रखी गयी है। इस अंक हेतु स्कन्द-पुराण वर्णित जगन्नाथ-माहात्म्य, वर्तमान जगन्नाथ मन्दिर का इतिहास, इस मन्दिर में दइता परिवार द्वारा पूजा की परम्परा, देश के अन्य जगन्नाथ-मन्दिरों का विवरण, रथयात्रा का वर्तमान स्वरूप, जगन्नाथ मन्दिर से सम्बन्धित ऐतिहासिक आख्यान, उड़ीसा के वैष्णव सन्तों की परम्परा, अतीत में विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तियों की जगन्नाथ-यात्रा के विवरण आदि विषयों पर आलेख आमन्त्रित हैं।

***

वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

जल-सूक्त

(ऋग्वेद, सप्तम मंडल, सूक्त संख्या 47, मन्त्र संख्या 1 से 4 तक।)

वेदों में जल को देवता कहा गया है। जल के लिए आपोदेव नाम आया है। ऋग्वेद के चार सूक्त इसी आपोदेव को समर्पित हैं। हम इन सूक्तों में वैदिक परम्परा की दृष्टि में जल के महत्त्व पर प्रकाश पाते हैं। यहाँ ऋग्वेद से उन सूक्तों को क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा है।

ऋग्वेद, सूक्त 47, मन्त्रदृष्टा ऋषि 'वरिष्ठ मैत्रावरुणि'

देवता 'आपः' छन्द 'त्रिष्टुप्'

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रानमूर्मिमकृण्वतेळः।।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतेप्रुषं मधुमन्तं वनेम।।1।।

हे जलदेव! देवत्व के इच्छुकों के द्वारा इन्द्रदेव के पीने के लिए भूमि पर प्रवाहित शुद्ध जल को मिलाकर सोमरस बनाया गया है। शुद्ध पापरहित, मधुर रसयुक्त सोम का हम भी पान करेंगे।

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वा शुहेमा।।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य।।2।।

हे जलदेवता! आपका मधुर प्रवाह सोमरस में मिला है। उसे शीघ्रगामी अग्निदेव सुरक्षित रखें। उसी सोम के पान से वसुओं के साथ इन्द्रदेव मत्त होते हैं। हम देवत्त्व की इच्छावाले आज उसे प्राप्त करेंगे।

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः।।
ता इन्द्रस्य न मिनन्तिं व्रतानि सिन्धुभ्यो हण्यं घृतवज्जुहोत।।3।।

ये जलदेवता हर प्रकार से पवित्र करके तृप्ति सहित प्राणियों में प्रसन्नता भरते हैं। वे जलदेव यज्ञ में पधारते हैं, परन्तु विघ्न नहीं डालते। इसलिए नदियों के निरंतर प्रवाह के लिए यज्ञ करते रहें।

याः सूर्यो रश्मिभिराततान याम्य इन्द्री अरदद् गातुभूर्मिम्।।
तो सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।।4।।

जिस जल को सूर्यदेव अपनी रश्मियों के द्वारा बढ़ाते हैं एवं इन्द्रदेव के द्वारा जिन्हें प्रवाहित होने का मार्ग दिया गया है, हे सिन्धो (जल प्रवाहों)! आप उन जलधाराओं से हमें धन-धान्य से परिपूर्ण करें तथा कल्याणप्रद साधनों से हमारी रक्षा करें।

***

व्रत-पर्व

ज्येष्ठ, 2078 वि. सं. 27 मई-24 जून, 2021ई.

1. गणेश चतुर्थी, ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्थी, आखुरथ चतुर्थी, 29 मई, 2021ई. शनिवार

2. अपरा एकादशी व्रत, ज्येष्ठ कृष्ण एकादशी, 6 जून, 2021ई. रविवार (सबके लिए)

3. वटसावित्री, ज्येष्ठ अमावस्या, 10 जून, 2021ई. गुरुवार

ज्येष्ठ अमावस्या। महिलाएँ आजीवन सधवा रहे के लिए तथा पति की आयुवृद्धि के लिए यह व्रत करतीं हैं। सावित्री सत्यवान की कथा इसके साथ जुड़ी हुई है। यह मध्याह्नव्यापिनी पर्व है अर्थात् जिस दिन दोपहर में अमावस्या तिथि होती है उसी दिन यह व्रत होगा, अतः इसे चतुर्दशीविद्धा कहा गया है। इसमें दोपहर में किसी बड़गद के वृक्ष के नीचे गौरी की पूजा कर लाल रंग के धागे से पेड़ के चारों और लपेटने का विधान है। मौसम में प्राप्त होने वाला फल भोग लगाया जाता है तथा पंखा डुलाया जाता है। पूजा के बाद महिलाएँ बरगद का पत्ता अपने जूडा में लगाती हैं। इस पूजा के बाद महिलाएँ पारण कर लेतीं हैं। विवाह के प्रथम वर्ष यह पर्व विशेष धूमधाम से मनाया जाता है।

4. रम्भा तृतीया, ज्येष्ठ शुक्ल तृतीया, पञ्चग्नि-व्रत, 13 जून, 2021ई., रविवार

पार्वती ने भगवान् शिव को पति के रूप में पाने के लिए चारों और अग्नि जलाकर तथा पाँचवीं अग्नि के रूप में सूर्य को निहारती हुई ग्रीष्मकाल की घोर तपस्या की थी। इसी उपलक्ष्य में यह व्रत किया जाता है।

5. गङ्गा दशहरा, ज्येष्ठ शुक्ल दशमी, 20 जून, 2021ई., रविवार

स्वर्ग से गंगा के अवतरण के उपलक्ष्य में गंगादशहरा का व्रत किया जाता है। इस दिन गंगा में स्नान करने से दस प्रकार के पापों का शमन होता है। एक अन्य उल्लेऽ के अनुसार इस दिन गंगा का अवतरण दस योग में हुआ था। ज्येष्ठ मास, शुक्ल पक्ष, दशमी तिथि, मंगलवार या बुधवार, हस्त नक्षत्र, व्यतीपात योग, गर करण, आनन्द योग, कन्या राशि में चन्द्रमा एवं वृष राशि में सूर्य- ये दश योग कहे गये हैं। इनमें से योगों की संख्या जिस वर्ष जितनी अधिक होगी, दशहरा का व्रत उतना प्रशस्त माना जायेगा। यदि ज्येष्ठ में मलमास भी हो, फिर भी मलमास में ही दशहरा होती है। निर्णय-सिन्धु में कमलाकर ने इसे दस दिनों तक चलनेवाला पर्व बतलाया है। उनके अनुसार ज्येष्ठ शुक्ल प्रतिपदा से गंगा के तट पर गंगा स्तोत्र का वृद्धि पाठ प्रतिपदा के दिन एक बार, द्वितीया के दिन दो बार इत्यादि के क्रम से करना चाहिए। इसप्रकार दशमी के दिन दश बार स्तोत्र का पाठ, षोडशोपचार पूजन आदि करना चाहिए। चावल के पीठा से बने जलीय जीवों का समर्पण भी करना चाहिए। स्तोत्र एवं पाठ की विधि धर्म-सिन्धु में उद्धृत किया गया है।

6. कबीर जयन्ती, ज्येष्ठ पूर्णिमा, 24 जून, 2021ई., गुरुवार

ज्येष्ठ पूर्णिमा के दिन जगद्गुरु रामानन्दाचार्य के शिष्य सन्त कबीर की जयन्ती मनायी जाता है। इस वर्ष परम्परा के अनुसार 623वीं जयन्ती मानी गयी है।

***

महावीर मन्दिर समाचार

मन्दिर समाचार (मई, 2021)

कोरोना की दूसरी लहर में जनता की सहायता के लिए तत्पर महावीर मंदिर

कोरोना मरीजों को एंबुलेंस की किल्लत को देखते हुए महावीर मन्दिर प्रबन्धन ने निःशुल्क एंबुलेंस और अंतिम यात्रा वाहन देने का निर्णय लिया है। महावीर वात्सल्य अस्पताल के निदेशक और पीएमसीएच के पूर्व प्राचार्य डॉ. एस. एन. सिन्हा को इसका नोडल अधिकारी बनाया गया है। कोरोना मरीजों को मुफ्त एंबुलेंस सहायता के लिए दूरभाष नं 0612-2275657 जारी किया गया।

ऑक्सीजन की निःशुल्क आपूर्ति

महावीर मन्दिर के आधिकारिक वेबसाइट mahavirmandirpatna.org पर शनिवार (01 मई 2021) सुबह सात बजे से ऑनलाइन बुकिंग शुरू हुई जो देर शाम तक जारी रही। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि महावीर मन्दिर की ओर से मानवता की सेवा का यह कार्य पूरी तरह निःशुल्क है। महावीर मन्दिर ट्रस्ट ने ऑक्सीजन प्लान्ट बिठाने के लिए पूरे देश में सम्पर्क किया, किन्तु किसी ने चार महीने के पहले इसे क्रियान्वित करने का आश्वासन नहीं दिया। अतः स्थानीय स्तर पर ऑक्सीजन सस्ते में प्रबन्ध कर मुफ्त वितरण का निर्णय लिया गया। प्रतिदिन जितनी ऑक्सीजन की प्राप्ति होगी उसी के अनुरूप वितरण किया जाएगा।

अभी हर दिन 150 जरूरतमंद रोगियों को ऑक्सीजन सिलेंडर उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है। अधिक मात्रा में ऑक्सीजन उपलब्ध होने पर इसे बढ़ाया जा सकता है। उन्होंने कहा कि महावीर मन्दिर का यह प्रयास कोरोना से लड़ाई में राम जी के सेतुबंध में गिलहरी की भूमिका जैसी सेवा होगी। आचार्य किशोर कुणाल ने बताया कि छोटा सिलेंडर ख़रीदने की बहुत कोशिश की गई लेकिन कहीं उपलब्ध न होने के कारण सिलेंडर का प्रबन्ध नहीं हो सका। इसलिए मरीज की ओर से 10.2 लीटर तक का खाली छोटा सिलेंडर लाने पर ही ऑक्सीजन दिया जा रहा है।

आवरण पृष्ठ 2 पर जारी ⇒

रामावत संगत से जुड़ें

1) रामानन्दाचार्यजी द्वारा स्थापित सम्प्रदाय का नाम रामावत सम्प्रदाय था। रामानन्द-सम्प्रदाय में साधु और गृहस्थ दोनों होते हैं। किन्तु यह रामावत संगत गृहस्थों के लिए है। रामानन्दाचार्यजी का उद्घोष वाक्य- **'जात-पाँत पूछ नहीं कोय। हरि को भजै सो हरि को होय'** इसका मूल सिद्धान्त है।

2) इस रामावत संगत में यद्यपि सभी प्रमुख देवताओं की पूजा होगी, किन्तु ध्येय देव के रूप में सीताजी, रामजी एवं हनुमानजी होंगे। हनुमानजी को रुद्रावतार मानने के कारण शिव, पार्वती और गणेश की भी पूजा श्रद्धापूर्वक की जायेगी। राम विष्णु भगवान् के अवतार हैं, अतः विष्णु भगवान् और उनके सभी अवतारों के प्रति अतिशय श्रद्धाभाव रखते हुए उनकी भी पूजा होगी। श्रीराम सूर्यवंशी हैं, अतः सूर्य की भी पूजा पूरी श्रद्धा के साथ होगी।

3) इस रामावत-संगत में वेद, उपनिषद् से लेकर भागवत एवं अन्य पुराणों का नियमित अनुशीलन होगा, किन्तु गेय ग्रन्थ के रूप में रामायण (वाल्मीकि, अध्यात्म एवं रामचरितमानस) एवं गीता को सर्वोपरि स्थान मिलेगा। **'जय सियाराम जय हनुमान, संकटमोचन कृपानिधान'** प्रमुख गेय पद होगा।

4) इस संगत के सदस्यों के लिए मांसाहार, मद्यपान, परस्त्री-गमन एवं परद्रव्य-हरण का निषेध रहेगा। रामावत संगत का हर सदस्य परोपकार को प्रवृत्त होगा एवं परपीड़न से बचेगा। हर दिन कम-से-कम एक नेक कार्य करने का प्रयास हर सदस्य करेगा।

5) भगवान् को तुलसी या वैजयन्ती की माला बहुत प्रिय है अतः भक्तों को इसे धारण करना चाहिए। विकल्प में रुद्राक्ष की माला का भी धारण किया जा सकता है। ऊर्ध्वपुण्ड्र या ललाट पर सिन्दूरी लाल टीका (गोलाकार में) करना चाहिए। पूर्व से धारित तिलक, माला आदि पूर्ववत् रहेंगे। स्त्रियाँ मंगलसूत्र-जैसे मांगलिक हार पहनेंगी, किन्तु स्त्री या पुरुष अनावश्यक आडम्बर या धन का प्रदर्शन नहीं करेंगे।

6) स्त्री या पुरुष एक दूसरे से मिलते समय **राम-राम, जय सियाराम**, **जय सीताराम**, हरि -जैसे शब्दों से सम्बोधन करेंगे और हाथ मिलाने की जगह करबद्ध रूप से प्रणाम करेंगें।।

7) रामावत संगत में मन्त्र-दीक्षा की अनूठी परम्परा होगी। जिस भक्त को जिस देवता के मन्त्र से दीक्षित होना है, उस देवता के कुछ मन्त्र लिखकर पात्र में रखे जायेंगे। आरती के पूर्व गीता के निम्नलिखित श्लोक द्वारा भक्त का संकल्प कराने के बाद उस पात्र को हनुमानजीके गर्भगृह में रखा जायेगा।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।। (गीता, 2.7)

8) आरती के बाद उस भक्त से मन्त्र लिखे पुर्जा में से कोई एक पुर्जा निकालने को कहा जायेगा। भक्त जो पुर्जा निकालेगा, वही उस भक्त का जाप्य-मन्त्र होगा। मन्दिर के पण्डित उस मन्त्र का अर्थ और प्रसंग बतला देंगे, बाद में उसके जप की विधि भी। वही उसकी मन्त्र-दीक्षा होगी। इस विधि में हनुमानजी परम-गुरु होंगे और वह मन्त्र उन्हीं के द्वारा प्रदत्त माना जायेगा। भक्त और भगवान् के बीच कोई अन्य नहीं होगा।

9) रामावत संगत से जुड़ने के लिए कोई शुल्क नहीं है। भक्ति के पथ पर चलते हुए सात्त्विक जीवन-यापन, समदृष्टि और परोपकार करते रहने का संकल्प-पत्र भरना ही दीक्षा-शुल्क है। आपको सिर्फ https://mahavlrmandlrpatna.org/Ramavat-sangat.html पर जाकर एक फार्म भरना होगा। मन्दिर से सम्पुष्टि मिलते ही आप इसके सदस्य बन जायेंगे।

***

मन्दिर समाचार, आवरण पृ. सं. 2 से जारी

मिल गई। महावीर आरोग्य संस्थान के निदेशक और पूर्व आई.ए.एस. अधिकारी डॉ. एस. सी. मिश्रा ने महावीर मन्दिर का प्रसाद और फूल भेंट कर उन्हें अस्पताल से विदा किया। इस मौके पर उन्होंने भविष्य में चारों के बेहतर स्वास्थ्य की कामना भी की। डॉ. मिश्रा ने बताया कि महावीर आरोग्य संस्थान में कोविड के इलाज के बाद डिस्चार्ज होने वाले मरीजों का अगले तीन माह तक नि:शुल्क फॉलो अप ट्रीटमेंट होगा। कोरोना के कारण हुई स्वास्थ्य समस्याओं को नि:शुल्क चिकित्सकीय परामर्श से ठीक किया जाएगा।

महावीर अस्पतालों के महानिदेशक का दायित्व संभाल रहे डॉ. मिश्रा ने बताया कि चार मरीजों के डिस्चार्ज के बाद अस्पताल में दि. 24 मई, 2021 तक कुल 21 मरीज स्वस्थ हुए हैं। सभी को ऑक्सीजन बेड और दूसरी जरूरी सुविधाओं के साथ सघन चिकित्सकीय निगरानी में इलाज किया जा रहा है। विशेषज्ञ डॉक्टर, नर्स से लेकर पर्याप्त संख्या में पैरामेडिकल कर्मियों को कोरोना मरीजों की देखभाल और इलाज में लगाया गया है। अमेरिका में कोविड अस्पताल चला रहे बिहारी मूल के कई डॉक्टर भी महावीर आरोग्य संस्थान में भर्ती कोरोना मरीजों को नि:शुल्क चिकित्सकीय परामर्श दे रहे हैं। महावीर मंदिर की ओर से मरीजों को तीनों समय भोजन-नाश्ता आदि नि:शुल्क दिया जा रहा है। सरकार द्वारा निर्धारित दर पर कोरोना मरीजों का इलाज किया जा रहा है।

लॉकडाउन में मन्दिर के द्वारा भोजन जरूरतमंदों के बीच भोजन वितरण

मन्दिर की ओर से सामान्य स्थिति में प्रतिदिन एक बार दरिद्रनारायण का भोज कराया जाता है। लेकिन वर्तमान कोरोना संकट में लॉकडाउन की स्थिति में निर्देशों का पालन करते वैकल्पिक व्यवस्था की गयी है। लेकिन वे भूखे न रहें, इसके लिए मन्दिर की ओर से पैकेटबंद भोजन वितरित किया जा रहा है। अनुशंसित पैकेजिंग विधि से भोजन का पैकेट बनाकर मन्दिर के कर्मचारी नियत समय पर इसे वितरित करते हैं।

पत्रिका पंजीयन सं. 52257/90

'धर्मायण' पत्रिका के
गौरवशाली 12 विशेषांक
(विक्रम संवत् 2077)

चैत्र, रामनवमी
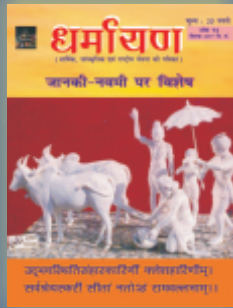
वैशाख, जानकी नवमी

ज्येष्ठ, गंगा-दशहरा
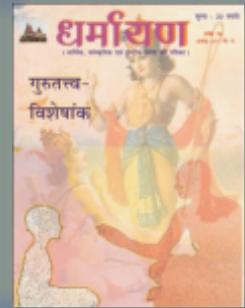
आषाढ, गुरुतत्त्व

श्रावण, नागपूजन
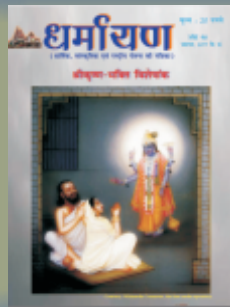
भाद्र, श्रीकृष्ण-भक्ति

आश्विन, वाल्मीकि-रामायण

कार्तिक, सूर्योपासना

मार्गशीर्ष, वैष्णव उपासना

पौष, खरमास

माघ, जगद्गुरु रामानन्दाचार्य

फाल्गुन, सन्त रविदास

श्री महावीर स्थान न्यास समिति, पटना द्वारा नि:शुल्क ई-बुक के रूप में प्रकाशित